UNIVERSAL LIBRARY
OU_180854
UNIVERSAL LIBRARY

Osmania University

Call No. H81·6 Accession No. H·2546

Author N32D

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

दर्द दिया है

लेखक
'नी र ज'

१९५६
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मूल्य ४)

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिन्टिंग प्रैस
क्वीन्स रोड, दिल्ली-६

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
१. दर्द दिया है	···	···	···	१
२. मेरा गीत दिया बन जाये	···	···	···	४
३. मस्तक पर आकाश उठाये	···	···	···	७
४. हज़ारों साझी मेरे प्यार में	···	···	···	६
५. छः रुबाइयाँ	···	···	···	११
६. तुम दीवाली बनकर जग का···		···	···	१३
७. दुनियाँ के घावों पर···	···	···	···	१५
८. तिमिर ढलेगा	···	···	···	१७
९. धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ		···	···	१९
१०. चार विचार	···	···	···	२१
११. उद्जन बम्ब के परीक्षण पर	···	···	···	२३
१२. आदि-पुरुष	···	···	···	३०
१३. दो रुबाइयाँ	···	···	···	३३
१४. आज जी भर देख लो तुम चाँद को ··		···	···	३४
१५. विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है।···		···	···	३७
१६. उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन ? ···			···	४०
१७. वह द्वार सुबह ने खोल दिया	···	···	···	४३
१८. एक विचार	···	···	···	४६
१९. दो रुबाइयाँ	···	···	···	४७
२०. चिर विरहिणी	···	···	···	४८
२१. एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !		···	···	५०
२२. सावन के त्यौहार में	···	···	···	५४
२३. मन क्या होता है ?	···	···	···	५६
२४. याद तुम्हारी	···	···	···	५८
२५. चाह मंज़िल की सिर्फ	···	···	···	६१
२६. पपिहा उठा पुकार पिया नहीं आये !		···	···	६२

विषय	पृष्ठ
२७. तस्वीर बन गया	६४
२८. लगन लगाई	६५
२९. जिस दिन तेरी याद न आई··· !	६६
३०. तब तुम आये	६८
३१. प्राण ! मन की बात···	६९
३२. तू उठा तो उठ गई सारी सभा	७०
३३. ओ बादर कारे !	७२
३४. जा में दो न समायँ	७३
३५. मैं तो तेरे पूजन को···	७५
३६. आज मेरे कंठ में	७७
३७. मेरे जीवन का सुख	७९
३८. गीत	८२
३९. इस द्वार जाऊँ	८४
४०. सात मुक्तक	८६
४१. जीवन-सत्य	८८
४२. गीत	९०
४३. गीत	९२
४४. गर कलम न छीनी गई	९४
४५. अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !	९६
४६. मिट्टी वाला	१०१
४७. अहं की कारा	१०३
४८. मैं कवि नहीं हूँ	१०७
४९. देश के करोड़ों बेकारों से !	११४
५०. स्वर्ग-धूत से	११८
५१. Life and Death	१२१
५२. Rise up ! Rise up ! O Love-incarnate-glory of Everest	१२२
५३. The Trial	१२३
५४. न बनने दो	१२५

उस शाम को
जिस दिन
सूरज नहीं डूबा

दृष्टिकोण

जब लिखने के लिए लिखा जाता है तब जो कुछ लिखा जाता है उसका नाम है गद्य, पर जब लिखे बिना रहा न जाए और जो खुद लिख-लिख जाए उसका नाम है कविता। मेरे जीवन में कविता लिखी नहीं गई, खुद 'लिख-लिख' गई, ऐसे ही जैसे पहाड़ों पर निर्झर और फूलों पर ओस की कहानी लिख जाती है। जिस प्रकार 'जल-जलकर बुझ जाना' दीपक के जीवन की विवशता है उसी प्रकार 'गाकर चुप हो जाना' मेरे जीवन की मजबूरी है। मजबूरी यानी वह मेरे अस्तित्व की शर्त है, अनिवार्यता है और इसीलिए मैं उसे नहीं, वह मुझे बाँधे हुए है। वह मुक्त है और मोक्ष भी, तभी तो न वह किसी वाद की अनुगामिनी है और न किसी सिद्धान्त की भामिनी। वह मुझ से ही नहीं दूसरों से भी कहती है—

"तुम लिखो हर बात चाहे जिस तरह चाहो,
काव्य को पर वाद का कंगन न बनने दो।"

क्या वह यह मानती है—

"आयु है जितनी समय की गीत की उतनी उमर है,
चाँदनी जब से हँसी है, रागिनी तब से मुखर है।
जिन्दगी गीता स्वयं है जान लें गाना अगर हम,
हर सिसकती साँस लय है, हर छलकता अश्रु स्वर है॥"

उत्तर से दक्खिन, पूरब से पच्छिम और धरती से आकाश तक जो कुछ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारी प्राण-सत्ता को प्रभावित करता है वह सब कुछ उसका विषय है—चाहे वह अंधकार हो या प्रकाश, जन्म हो या मृत्यु, सुख हो या दुःख, राग हो या विराग, धूप हो या छाँह, संघर्ष हो या शान्ति चाहे वह किसी प्रवासी की सूनी साँझ हो या किसी संयोग की सुबह, चाहे वह तपती-जलती हुई किसी श्रमिक की दोपहर हो अथवा प्रणय के लिए रत किसी प्रेयसी की चाँदनी रात हो। जहाँ तक जीवन है, जहाँ तक मनुष्य है, जहाँ तक सृष्टि है, वहाँ तक उसकी गति है, उसके लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है, अशिव को शिव, असुन्दर को सुन्दर

और असत्य को वह सत्य बनाना चाहती है। यही उसके गाने का ध्येय है और यही उसके रोने का अर्थ है। उसने शब्दों का जो महल बनाया है उसमें तो दीवानेखास-जैसी कोई चीज नहीं है। वहाँ केवल दीवाने-आम ही है और उसमें प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ण, बिना किसी संकोच के प्रवेश कर सकता है और आमने-सामने खड़ा होकर अपनी बात कह सकता है। उसके पास सबकी सुनने की सहिष्णुता है, क्योंकि उसने यह माना है कि सत्य किसी एक ही की थाती नहीं और न ही उसका एक रास्ता है। वह फुटपाथ पर भूख से छटपटाते हुए एक भिखारी के पास भी मिल सकता है और वर्षों से अँधेरे में पड़े हुए एक खंडहर में भी, इसीलिए उसने गाया है—

"इस द्वार क्यों न जाऊँ,
उस द्वार क्यों न जाऊँ।
घर पा गया तुम्हारा,
मैं घर बदल-बदल कर।"

मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और कोई दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है। जो साहित्य मनुष्य के सुख-दुःख का साझीदार नहीं, उससे मेरा विरोध है। मैं अपनी कविता द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ। वही मेरी यात्रा का आदि है और वही अंत। रास्ते पर कहीं मेरी कविता भटक न जाए, इसलिए उसके हाथ में मैंने प्रेम का एक दीपक दे दिया है। मानवीय सम्बन्धों में मेरे विचार से प्रेम का सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध है। वह एक ऐसी हृदय-साधना है जो निरन्तर हमारी विकृतियों को शमन करती हुई हमें मनुष्यता के निकट ले जाती है। व्यक्ति के जीवन की मूल विकृति मैं अहं को मानता हूँ, जो सामाजिक रूप से स्वार्थ का वेष धारण करता है। घृणा, द्वेष, दम्भ, वैषम्य, युद्ध, संहार इन सबका कारण यही अहं है। इसी से मुक्त होने में मनुष्य की मुक्ति है। मेरी परिभाषा में इसी अहं के समर्पण का नाम प्रेम है और इसी अहं के विसर्जन का नाम साहित्य है। जो प्रेम का इष्ट है वही साहित्य का लक्ष्य है, इसीलिए मेरे विचार से अपने अन्तिम रूप में प्रेम-साधना के समान साहित्य-साधना भी हृदय-साधना ही है। कवि बनना है तो पहले महान् मनुष्य बनो—यह मेरे काव्य का शीर्ष वाक्य है।

तो प्रेम और विशेष रूप से मानव-प्रेम मेरी कविता का मूल स्वर

है। 'आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ,' यह मेरी कमजोरी भी है और शक्ति भी है। कमजोरी इसलिए कि घृणा और द्वेष से भरे आज के संसार में मानव-प्रेम के गीत गाना अपनी पराजय की कहानी ही कहना है, पर शक्ति इसलिए है कि मेरे इस मानव-प्रेम ने ही मेरे आस-पास बनी हुई धर्म-कर्म, जाति-पाँति आदि की दीवारों को ढहा दिया है और मुझे वादों के भीषण झंझावात में भी पथभ्रष्ट नहीं होने दिया है, जब मैं अपना सत्य खोजने निकला था—

"पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण,
बाँह डाली कली ने गले में चंचल।
एक तसवीर तेरी लिए, किंतु मैं–
साफ दामन बचाकर गया ही निकल।"

—विभावरी

मेरे पास मनुष्य की तसवीर थी इसीलिए मैं अपने रास्ते से नहीं भटक सका। इसलिए यह मेरी शक्ति है। पर इसे पूरी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप यह भी जान लें कि मुझे इसकी कितने रूपों में अनुभूति हुई है। मैं यह मानता हूँ कि पेट की भूख के साथ-साथ मनुष्य में एक और भी भूख है, जिसका नाम है सृजन की भूख। प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व जो स्वयं को विश्व में किसी-न-किसी रूप में प्रतिबिम्बित करने के लिए विकल है उसका कारण यही है—

"दीप को अपना बनाने को
पतंगा जल रहा है,
बूँद बनने को समुन्दर की
हिमालय गल रहा है।

यही सृष्टि की प्रजनन-प्रक्रिया है। इसे ही वासना कहा गया है। यही प्रत्येक कला और साहित्य की मूल प्रेरणा है। यही वासना भिन्न-भिन्न चेतना-स्तरों पर भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। मनुष्य में पंच-कोषों की सत्ता को मैं व्यक्ति की पंच चेतनाओं के रूप में स्वीकार करता हूँ। निरन्तर विकासशील होने के कारण कवि के मानस में व्याप्त सृजन की यह भूख सतत ऊर्ध्वगामी होती जाती है जिसके फलस्वरूप उसे भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुभूति होती है। जब तक यह वासना अन्नमय कोष में व्याप्त रहती है, तब तक यह 'आकर्षण' कहलाती है। इस स्तर पर मनुष्य मांसलता से आक्रान्त रहता है और इस समय उसके

भीतर का पशु प्रबल होता है। वह पाना तो चाहता है, किन्तु देना कुछ नहीं चाहता–यही पाशविक वृत्ति है और इसी का नाम स्वार्थ है। इस स्तर पर जो रचना की जाती है वह घोर यौन-तृष्णा से विकल होती है। मैंने जीवन में इस प्रकार का केवल एक गीत लिखा है—"आज तो मुझ से न शरमाओ तुझे मेरी कसम है।" संयम के कारण जब कभी वासना और ऊपर की ओर संक्रमण करती है तब प्राणकोष में प्रवेश करती है। प्राणकोष में पवन यानी आवागमन है। यहीं से 'प्रेम' का उदय होता है। इस स्तर पर मनुष्य में प्राप्ति की कामना के साथ-साथ देने की भावना भी रहती है। यहाँ से स्वार्थ का परिहार आरम्भ होता है, पर स्वार्थ की चेतना सर्वथा मिट नहीं जाती । पशुत्व क्षीण होने लगता है और मनुष्यत्व प्रबल होने लगता है। पर पूर्णतया उसका विनाश नहीं हो पाता, इसीलिए प्रेम के साथ-साथ ईर्ष्या भी चलती रहती है। यहीं से काव्य में दार्शनिकता का जन्म होता है। 'विभावरी' में संगृहीत मेरी अधिकांश रचनाएँ इसी स्तर की हैं और कुछ 'प्राण-गीत' की भी। प्राणमय-कोष से जब यह मनोमय-कोप में गमन करती है तब कवि में 'भक्ति' की अनुभूति जागृत होती है। प्राप्ति की कामना यहाँ सो जाती है । कविता यहाँ पहुँचकर स्त्री बन जाती है, क्योंकि समर्पण स्त्री ही कर सकती है, पुरुप नहीं । भक्त कवियों तथा सूफियों ने जो 'राम की बहुरिया' बनकर अपने हृदय की वेदना व्यक्त की है उसका तथा भारतवर्ष में सखी सम्प्रदाय के जन्म का कारण भी यही है । मेरी भी कुछ कविताएँ इसी स्तर की हैं। उदाहरणार्थ, यह गीत—

तुमने लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई।
सांस-सांस बन गई सुमिरनी,
मृगछाला सबकी सब धरिणी,
क्या गंगा, कैसी वैतरिणी,
भेद न कुछ कर पाई,
दहाई बनी इकाई।

भक्ति की तन्मयता विरह-वेदना में ही है। विरह का कारण है द्वैत, जिसका आरम्भ मनोमय-कोप से ही होता है। इसीलिए प्रत्येक भक्त कवि ने मोक्ष पर धूल फेंकी है और अद्वैतवाद को नीरस ज्ञान के रूप में तिरस्कृत कर दिया है। मनोमय कोष के ऊपर विज्ञानमय कोष है। यहाँ

से द्वैत की समाप्ति आरम्भ होती है। इस स्तर पर कवि में सामाजिक चेतना और जन-मंगल की भावना जागृत होती है। यहीं से वास्तविक प्रगतिशील कविता का जन्म होता है (किन्तु आज की प्रगतिशील कविता इस श्रेणी में नहीं आती, क्योंकि उसमें से अधिकांश अनुभूतिशून्य हैं और केवल सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए लिखी-सी जान पड़ती हैं। हाँ, प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में इसके अवश्य दर्शन होते हैं और कहीं-कहीं नाजिम हिकमत की कविताओं में भी इसकी झलक मिलती है)। मेरी 'अब युद्ध नहीं होगा' शीर्षक कविता इसी चेतना-स्तर की कविता है। यहाँ व्यक्ति न स्त्री रूप में सोचता है, न पुरुष रूप में। वह विश्व का एक अंश बन जाता है! निम्नलिखित गीत में इसी की ध्वनि है—

"अँधियारा जिससे शरमाए
उजियारा जिसको ललचाए,
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाए।"

और सबसे ऊपर आनन्दमय-कोप है। यहाँ अहं का पूर्ण विसर्जन है और प्रेम की यही अन्तिम परिणति है। यहाँ व्यक्ति की चेतना का विश्व-चेतना में पूर्ण तिरोभाव है। यही साहित्य का और प्रगतिवाद का अंतिम सोपान है। गोस्वामी जी के रामचरितमानस में इसी चेतना-स्तर की झलक है।

इसी सम्बन्ध में एक बात और कह दूँ। मेरे विचार से अनुभूति का अर्थ है उष्णता (ताप यानी वेदना)। उष्णता (ताप) ही जीवन है। प्रेम की गहराई या ताप की अधिकता या न्यूनता से ही नापी जाती है। काव्य में जो मर्मस्पर्शिता होती है उसकी जन्मदात्री भी यही उष्णता या वेदना है। यदि वह नहीं है तो कविता उपदेश भले हो, कविता नहीं कही जा सकती। इसका एक सृजनात्मक पहलू यह है कि यह मनुष्य के हृदय को छूकर उसे सहिष्णु और विशाल बना देती है। सुख आदमी को कैसे सीमित करता है और दुःख उसे कैसे विस्तृत करता है इसी बात को मैंने इस प्रकार कहा है—

"मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर में रहूँ अकेला पर,
सुख ने दरवाजा बन्द किया, दुःख ने दरवाजा खोल दिया।"

मेरी कविताओं में इसी वेदना (उष्णता) की सहज स्वीकृति है।

कुछ लोगों के विचार से यह नैराश्य-प्रसूत है, पर मेरे अपने अनुभव से यह अपनी काव्य-वस्तु के प्रति मेरी निश्छल एवं ऐकान्तिक तन्मयता के कारण ही है। इसे आप यदि मेरी कविताओं से निकाल देंगे तो मेरी उमर आधी रह जाएगी। मैं ही क्या संसार में जितने महान् कवि हुए हैं उनकी रचनाओं से यदि आप उनकी 'वेदना' को बहिष्कृत कर दें तो फिर शायद आप ही उन्हें पढ़ना पसन्द नहीं करेंगे।

कविता के आन्तरिक संगठन के विषय में मेरा मत है कि यद्यपि श्रेष्ठ कविता में हृदय और बुद्धि का संतुलन होता है, तथापि उनकी क्रियाएँ विपरीत होती हैं। बुद्धि का कार्य सोचना है और हृदय का व्यापार अनुभूति प्राप्त करना है। कविता में दोनों की क्रियाएँ बदल जाती हैं। हृदय सोचने लगता है और बुद्धि अनुभव करने लगती है। इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि कविता में बुद्धि सोचती तो है, पर हृदय के माध्यम से ही सोचती है। बाइबिल में एक वाक्य है आदि में शब्द और शब्द ईश्वर था। शब्द का अर्थ है प्रतीक। प्रतीक का अर्थ है विचार और ईश्वर का अर्थ है सृष्टि यानी विचार सृष्टि है। कविता भी एक सृष्टि है, पर वहाँ विचार को नहीं केवल भाव को ही स्थान है (कविता सुनकर लोग कहते हैं आपका भाव बहुत सुन्दर है; आपका विचार सुन्दर है यह कोई नहीं कहता)। पर विकार ही वहाँ भाव बन जाता है। कैसे ? बाइबिल का ही एक दूसरा वाक्य है—'सब ओर जल था और उस पर एक चेतना मनन कर रही थी।' 'मनन' शब्द 'ब्रूडिंग' के लिए आया है। 'ब्रूडिंग' का अर्थ सेना भी होता है। मुर्गी जब अपने अंडे को सेती है तो उसके द्रव्य-तत्त्व में प्राण-संचार (ताप-संचार) होता है। इसी प्रकार जब कवि किसी विचार पर मनन करता है, उसे सेता है यानी जब उसमें अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को डुबो देता है, जैसे मुर्गी अपने तन-मन-प्राण-पंख सबके ताप को केन्द्रित कर अंडे के द्रव्य में संचरित कर देती है तब वह विचार-सृष्टि यानी भाव बन जाता है। इसी बात को यदि यों कहें तो अधिक उपयुक्त होगा—जब तक हम किसी विचार को आत्मसात् किये रहते हैं तब तक वह विचार विचार रहता है, किन्तु जब विचार हमें आत्मसात् कर लेता है यानी हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व तन, मन, रक्त, मांस, मज्जा आदि में घुल-मिल जाता है तब वह भाव बन जाता है। मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि जिन कविताओं को मैंने प्रतीक्षा करने के बाद लिखा है वे मेरी श्रेष्ठ रचनाएँ हुई हैं।

कोई भी विचार एक बार मन में उठकर कभी मिट नहीं पाता। वह हमारी उपचेतना में चला जाता है और कुछ काल बाद एक तीव्र अनुभूति के रूप में हमारे कंठ से फूट पड़ता है। यह जो फूटना है वही सहज है और वही कविता है। गीत की रचना में हमें कविता से एक कदम और आगे बढ़ना पड़ता है। उसकी सृष्टि में बुद्धि पूर्णतया हृदय की शरण में जाकर सोचने का कार्य कंठ को सौंप देती है। ऐसा इसलिए होता है कि गीत का प्राण केवल एक अमूर्त्त भाव होता है जो स्वर-संकेत से व्यक्त होता है। जब तक रचना का आधार मूर्त्त होता है तभी तक बुद्धि साथ देती है, किन्तु जैसे ही विषय अमूर्त्त हुआ बुद्धि निस्सम्बल होकर हृदय के पास जाकर समर्पण कर देती है। कविता में हम हृदय से सोचते हैं और बुद्धि (विवेक) से अनुभूति प्राप्त करते हैं, किन्तु गीत में हृदय कंठ के द्वारा सोचने लगता है। इसलिए बिना गुनगुनाए हुए गीत नहीं लिखा जाता। यह क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि कभी-कभी ही रचना के क्षणों में इसका आभास होता है।

मेरी भाषा के प्रति लोगों की शिकायत रही है कि न तो वह हिन्दी है और न उर्दू। उनकी यह शिकायत सही है और इसका कारण यह है कि मेरे काव्य का जो विषय 'मानव-प्रेम' है उसकी भाषा भी इन दोनों में से कोई नहीं है। हृदय में प्रेम सहज ही अंकुरित होता है और वह जीवन में सहज ही हमें प्राप्त होता है। जो सहज है उसके लिए सहज भाषा ही अपेक्षित है। असहज भाषा में यदि वह कहा जाएगा तो अनकहा ही रह जाएगा। प्रत्येक समाज की एक सहज भाषा होती है। मैं जिस समाज में रहता हूँ उस समाज की सहज भाषा वही है जिसमें मैं कविता लिखता हूँ। जो विषय असहज हैं उनके लिए मैंने भी असहज भाषा का ही प्रयोग किया है, जैसे 'स्रष्टा', 'जीवन-गीत', अरविन्द की कविताओं के अनुवाद आदि में। फिर मैं यह भी मानता हूँ कि प्रत्येक विषय की भाषा अलग होती है। चेतना के पंचस्तरों के साथ ही साथ भाषा के भी—चिन्ह, संकेत, भाव, सूत्र और मंत्र पाँच स्तर होते हैं—चिन्ह (आकर्षण), संकेत (प्रेम), भाव (भक्ति), सूत्र (अंशरूप), मंत्र (आनन्द)। विषयों के अनुरूप मैंने भी चित्रमयी, संगीतमयी, परुष, दार्शनिक, सहज, सांकेतिक आदि भाषाओं का प्रयोग किया है। विस्तार-भय से मैं यहाँ उद्धरण नहीं दे रहा हूँ, किन्तु यदि आप ध्यान से मेरी रचनाओं को पढ़ेंगे तो आपको इन सबके उदाहरण उनमें मिल जाएँगे।

मैंने कविताओं की अपेक्षा गीत अधिक लिखे हैं और मेरे गीत लोकप्रिय भी हुए हैं—यह भी सत्य है। अधिकांश लोग उनकी लोकप्रियता का श्रेय मेरे कविता-पाठ के ढंग को देते हैं। कुछ हद तक यह भी सत्य है, पर उनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है उनकी निर्झर-सी अबाध गति और स्वाभाविक भाषा में गुँथी हुई स्वाभाविक अनुभूति। कविता की सबसे बड़ी शक्ति उसकी गति और स्वाभाविकता ही है। जब हम स्वाभाविकता से अस्वाभाविकता की ओर जाते हैं तब गद्य रचना करते हैं और जब अस्वाभाविकता से स्वाभाविकता की ओर आते हैं तब कविता लिखते हैं। स्वाभाविकता ही गति है, जो व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि सबकी स्थिति का एकमात्र कारण है। कविता भी एक सृष्टि है, इसलिए सृष्टि के समान गति (लय) उसकी भी आधार-शिला है। वाक्य में गति क्रिया के सहज एवं उचित प्रयोग से ही आती है। संस्कृत साहित्य में उत्तराधिकार में पाने तथा स्वभाव से आध्यात्मिक चिन्तन में लीन होने के कारण हिन्दी ने 'क्रिया' के महत्त्व को कभी ठीक तरह से नहीं समझा (ब्रजभाषा और अवधी के कवियों ने यह गलती नहीं की)। या तो उसने उसका बहिष्कार किया या उसका गलत प्रयोग किया। आधुनिक हिन्दी कविता में क्रिया को स्थान-च्युत और पदच्युत करने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। आरम्भ में मैंने भी यही भूल की थी पर एक दिन अचानक ही एक चार वर्ष के बच्चे ने मुझे मेरी भूल सुझाई और तब से मैं क्रिया के प्रयोग के विषय में अधिक सजग रहने लगा। श्रेष्ठ कविता का एक गुण स्मरणीयता भी है और वह भी बहुत कुछ क्रिया के उचित या अनुचित प्रयोग पर ही निर्भर है। जिस वाक्य में 'क्रिया' स्थानभ्रष्ट होगी वह वाक्य प्रयत्न करने पर भी स्मृति में अधिक देर तक नहीं ठहर सकता और जिस वाक्य में 'क्रिया' अपने निश्चित स्थान पर होगी वह वाक्य बिना प्रयास हमारे स्मृति-पट पर अंकित हो जायगा। नीचे के दो उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा।

१. "आज जी भर देख लो तुम चाँद को,
क्या पता यह रात फिर आए न आए।"

२. "एक तिनके ने किसी तूफान के–
साथ उड़कर जब लिया आकाश छू।"

ऊपर दिए हुए दोनों उदाहरणों में जो अन्तर है वह स्पष्ट है। पहले वाक्य में क्रिया अपने यथास्थान पर है, इसलिए गति के साथ-साथ उसकी स्मरणीयता भी बढ़ जाती है। दूसरे स्थान में 'छू लिया' को तोड़कर उसे स्थानच्युत कर दिया गया है, इसलिए वाक्य की स्मरणीयता ही नहीं उसकी गति भी क्षीण हो जाती है।

भाषा, अर्थ और संकेत की स्वाभाविकता में शब्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अकेले शब्द का कोई अर्थ नहीं होता। शब्द का अर्थ वाक्य अर्थात् अन्य शब्दों के सम्बन्ध तथा समय और स्थान के संदर्भ से प्राप्त होता है। मैंने यह माना है कि जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है और उसे पूर्णता देने वाला उसकी आत्मा का साथी इस संसार में कहीं छुपा है, उसी प्रकार प्रत्येक शब्द भी अपूर्ण है और उसका भी एक पूरक शब्द है—जैसे सुबह का शाम, जमीन का आसमान, दिन का रात आदि-आदि। जिस ध्वनि-सामंजस्य के फलस्वरूप एक शब्द का सम्बन्ध दूसरे से जुड़ता है वह शताब्दियों के प्रयोग और संस्कार के बाद प्राप्त होता है, क्योंकि भाषा व्यक्ति की नहीं समाज की सृष्टि है। कोष में प्रत्येक शब्द के कुछ-न-कुछ पर्यायवाची शब्द होते हैं, पर कविता के लिए वे नहीं बने हैं। कविता में एक शब्द का स्थान उसी अर्थ का दूसरा शब्द नहीं ले सकता—यदि ले सकता है तो मेरी दृष्टि में यह उस कविता की कमी है। कविता की स्वाभाविक भाषा वह होती है जिसमें प्रत्येक शब्द दूसरे शब्द का पूरक बनकर उपस्थित हो जैसे निम्नलिखित चरण में—

"अनजान यह नगर है, अनजान यह डगर है।
न चढ़ाव का पता है, न ढलाव की खबर है
सब कह रहे मुसाफिर ! चलना सम्हल-सम्हलकर।
लम्बा बहुत सफर है, छोटी बहुत उमर है।"

इस प्रकार की भाषा से जो संगीत उत्पन्न होता है वह स्वर-संगीत, शब्द-संगीत आदि से बढ़कर हृदय-संगीत होता है और यही संगीत भाव-संगीत के रूप में गीत का इष्ट होता है। मेरे गीतों में अन्तःसलिला के समान यही संगीत व्याप्त है। चेतना के जिस स्तर पर 'भक्ति' का उदय होता है उसी स्तर पर इस संगीत का जन्म होता है। सूर, मीरा, महादेवी और कोकिल जी की इधर की रचनाओं में यह व्याप्त है। बच्चनजी की भी कुछ रचनाओं में हमें इसके दर्शन होते हैं।

यह रही मेरी बात। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा अन्य वादों के रूप में जो विवाद आज हिन्दी में प्रचलित हैं उसमें मेरी आस्था नहीं है। यद्यपि मैं प्रगति को जीवन का इष्ट मानता हूँ और प्रयोग को प्रगति का सहायक, किन्तु न तो किसी वाद-विशेष से आक्रान्त प्रगति का मैं पोषक हूँ और न किसी सिद्धान्त-विशेष से सम्बन्धित प्रयोग का हिमायती। जीवन के वाक्य पर विराम-चिन्ह नहीं रखा जा सकता, उसको बाँध देना उसकी गति को अवरुद्ध कर देना है ! साहित्य जीवन का उपनाम है। मेरी दृष्टि में वही साहित्य श्रेष्ठ है जो हमें हमारे व्यक्तित्व के संकुचित घेरे से निकालकर अधिक-से-अधिक विश्व मानवता के निकट ले जाता है। वास्तविक प्रयोग मेरे निकट वह है जो विचार-प्रयोग के साथ-साथ भाषा, छन्द, लय, तान आदि के भी प्रयोग करता है। विचार-प्रयोग को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के प्रयोग मेरे विचार से फैशन हैं और वे पेरिस की सड़कों पर ही प्रतिष्ठा पा सकते हैं वृन्दावन या अयोध्या की गलियों में नहीं। यहाँ तो सूर-मीरा की तन्मयता और तुलसी का जीवन-दर्शन ही अपेक्षित है ! और फिर ऐसा हृदय जो कह सके—

"कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है।"

—'नीरज'

दर्द दिया है

१

दर्द दिया है, अश्रु स्नेह है, बाती बैरिन श्वास है,
जल-जलकर बुझ जाऊँ मेरा बस इतना इतिहास है !

मैं ज्वाला का ज्योति-काव्य
चिनगारी जिसकी भाषा,
किसी निठुर की एक फूँक का
हूँ बस खेल - तमाशा,

पग-तल लेटी निशा, भाल पर
बैठी ऊषा गोरी,
एक जलन से बाँध रखी है
साँझ - सुबह की डोरी,

सोये चाँद-सितारे, भू-नभ, दिशि-दिशि स्वप्न-मगन है
पी पीकर निज आग जग रही केवल मेरी प्यास है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ मेरा बस इतना इतिहास है !!

विश्व न हो पथ-भ्रष्ट इसलिये
तन - मन आग लगाई,
प्रेम न पकड़े बाँह शलभ की
ख़ुद ही चिता जलाई,

रोम रोम से यज्ञ रचाया
आहुति दी जीवन की,
फिर भी जब मैं बुझा
न कोई आँख बरसने आई,

किसे दिखाऊँ दहन-दाह, किस अंचल में सो जाऊँ
पास बहुत है पतझर मुझसे, दूर बहुत मधुमास है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है !!

यह पतंग का प्यार, किसी
के नयनों की यह छाया,
केवल तब तक है, जब तक
बस एक न झोंका आया,

बुझते ही यह लौ, चुकते ही
यह सनेह, यह बाती,
सृष्टि मुझे भूलेगी जैसे
तुमने मुझे भुलाया,

बुझे दिये का मोल नहीं कुछ क्यों मिट्टी के घर में ?
सोच-सोच रो रहा गगन, औ' धरती पड़ी उदास है
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है !!

सीनाज़ोरी हवा कर रही,
है नाराज़ अँधेरा
इतना तो जल चुका मगर
है अब भी दूर सबेरा,

तिल तिल घुलती देह, रिस
रहा बूँद - बूँद जीवन-घट
कुछ क्षण के ही लिये और है
अपना - रैन - बसेरा,

यद्यपि हूँ लाचार सभी विधि निठुर नियति के आगे
फिर भी दुनियाँ को सूरज दे जाने की अभिलाष है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है !!

मुझे लगा है शाप, न जब तक
रात प्रात बन जाये,
तब तक द्वार-द्वार मेरी लौ
दीपक - राग सुनाये,

जब तक खुलती नहीं बाग़ की
पलकें फूलोंवाली,
तब तक पात-पात पर मेरी
किरन सितार बजाये,

आये-जाये साँस कि चाहे रोये-गाये पीड़ा
मैं जागूँगा जब तक आती धूप न सबके पास है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ मेरा बस इतना इतिहास है !!

मेरा गीत दिया बन जाये

२

अँधियारा जिससे शरमाये,
उजियारा जिसको ललचाये,
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये !

इतने छलको अश्रु थके हर
राहगीर के चरण धो सकूँ,
इतना निर्धन करो कि हर
दरवाज़े पर सर्वस्व खो सकूँ,

ऐसी पीर भरो प्राणों में
नींद न आये जनम-जनम तक,
इतनी सुध - बुध हरो कि
साँवरिया ख़ुद बाँसुरिया बन जाये !

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये !!

घटे न जब अँधियार, करे
तब जलकर मेरी चिता उजेला,
पहला शव मेरा हो जब
निकले मिटनेवालों का मेला,

पहले मेरा कफ़न पताका
बन फहरे जब क्रान्ति पुकारे,
पहले मेरा प्यार उठे जब
असमय मृत्यु प्रिया बन जाये !

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये !!

मुरझा पाये फ़सल न कोई
ऐसी खाद बने इस तन की
किसी न घर दीपक बुझ पाये
ऐसी जलन जले इस मन की,

भूखी सोये रात न कोई
प्यासी जागे सुबह न कोई,
स्वर बरसे सावन आ जाये
रक्त गिरे गेहूँ उग आये !

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये !!

बहे पसीना जहाँ, वहाँ
हरयाने लगे नई हरियाली,
गीत जहाँ गा आय, वहाँ
छा जाये सूरज की उजियाली,

हँसदे मेरा प्यार जहाँ
मुस्कादे मेरी मानव - ममता
चन्दन हर मिट्टी हो जाये
नन्दन हर बगिया बन जाये।

ऐसा देदो दर्द मुझे तुम।
मेरा गीत दिया बन जाये॥

उनकी लाठी बने लेखिनी
जो डगमगा रहे राहों पर,
हृदय बने उनका सिंहासन
देश उठाये जो बाँहों पर,

श्रम के चरण चूम आई
वह धूल करे मस्तक पर टीका,
काव्य बने वह कर्म, कल्पना–
से जो पूर्व क्रिया बन जाये!!

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये!!

मुझे शाप लग जाय, न दौड़ूँ
जो असहाय पुकारों पर मैं,
आँखें ही बुझ जायँ, बेबसी
देखूं अगर बहारों पर मैं,

टूटें मेरे हाथ न यदि यह
उठा सकें गिरने वाले को
मेरा गाना पाप अगर
मेरे होते मानव मर जाये!

मस्तक पर आकाश उठाये···

२

मस्तक पर आकाश उठाये, धरती बाँधे पाँवों से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

चन्दनवाली साँस तुम्हारी, कुन्दनवाली काया है,
बादलवाली धूप उजाली, पीपलवाली छाया है,
सावन-नयना, मधुऋतु-बैना, भादों-कुन्तल केशा तुम,
सुबह-दुपहरी, शाम-सुनहरी सभी तुम्हारी माया है,
उजड़ी रातों वाला काजल, बिछुड़े नयनोंवाला जल
सुनो तुम्हीं को बुला रहे सब उन अजनबी चिताओं से
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

पड़ें तुम्हारे पाँव जहाँ हो तीरथ वहाँ सबेरे का,
खुले तुम्हारा द्वार जिस समय, घूँघट खुले उजेरे का,
छूलो तुम जो दीप सितारा बन जाये जग का प्यारा,
पूनम का दर्पन हो जाये काला देश अँधेरे का,
किरनों की करधनी पहिन धरती सोलह सिंगार करे
तुम जब अपनी धूप उड़ाओ, उड़ती हुई हवाओं से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से!!

तुम जब दो आवाज़ पहाड़ों की बोली मिट्टी बोले,
तुम जब छेड़ो तान, चाँदनी घट-घट में चन्दा घोले,
तुम जब हो नाराज़ ध्वस्त हो जाये रूढ़ि, पुरातनता,
तुम जब हँस दो प्राण! धरा के लिये स्वर्ग का मन डोले,
बजे तुम्हारी पायल जिस दम सूने में, वीराने में
हँसती हुई बहारें बरसें रोती हुई घटाओं से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

तुम उनका शृङ्गार करो जिनका पतझारों में घर है,
तुम उनका जयकार बनो जिनका तलवारों पर सर है,
तुम उनको दो मुकुट धरा की धड़कन हैं जिनकी साँसें,
तुम उन पर जलधार झरो, जिनका अंगारों का स्वर है
जिनका रक्त सिंदूर सुबह का, जिनका स्वेद सूर्य जग का
उनकी कीर्ति-पताका बन तुम फहरो सकल दिशाओं से
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

नयन तुम्हारे दीप बनें जब पूजा हो जग में श्रम की
शीश तुम्हारा सीढ़ी हो नव जन-युग के जन-संगम की
श्वास तुम्हारी कहे कहानी उन सब मिटने वालों की
जिनकी अर्थी देख न पाई सेज किसी भी शबनम की
सबसे पहले रक्त तुम्हारा रवि के भाल करे टीका
जिस दिन सुर्ख सबेरा बाहर निकले सर्द गुफ़ाओं से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

हज़ारों साझी मेरे प्यार में

४

मैं उन सबका हूँ कि नहीं कोई जिनका संसार में !
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में !!

मेरा चुम्बन चाँद नहीं, सूरज का जलता भाल है,
आलिंगन में फ़ूल न कोई, धरती का कंकाल है,
वर्तमान के लिये विकल मैं, विरही नहीं अतीत का,
नव भविष्य का नव स्वर्णोदय सपना मेरे गीत का,
किसी एक टूटे स्वर से ही मुखर न मेरी श्वास है,
लाखों सिसक रहे गीतों के क्रन्दन-हाहाकार में !!
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में !!

मैं गाता हूँ नहीं किसी की प्रीति चुराने के लिये,
मेरा यह तप है दुनियाँ का दुख पी जाने के लिये,

कल जिस राह चलेगा जग मैं उसका पहला प्रात हूँ
तुम्हें अँधेरे में दिखता हूँ पर सूरज के साथ हूँ,
शब्दों के वस्त्रों में तुम पहचान न पाओगे मुझे
मैं बैठा हूँ कफ़न लपेटे हर बाग़ी तलवार में !
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में !!

जितने घर वीरान सभी वे मेरे तीरथ-धाम हैं,
बेघरबार दीप जो भी मेरे बनवासी राम हैं,
याद द्रौपदी के प्रण की हैं गुँथे न अब तक केश जो
गोवर्धनधारी की स्मृति वे शीश उठाये देश जो,
मेरा भी गुलाब की गलियों को मन होता है मगर—
फूल खिलाने हैं मुझको हर आँधी, हर पतझार में !
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में !!

मैंने रात वहाँ काटी चाँदनी जहाँ सोती नहीं,
भोर किया उस जगह, जिस जगह कभी सुबह होती नहीं,
तपी वहाँ दोपहर जहाँ है भूख खड़ी मैदान में,
साँझ हुई उस देश, ज़िन्दगी जहाँ बुझी खलिहान में,
या तो पार लगा दूँगा मैं इस मौसम की नाव को
या फिर बेमौसम डूबूँगा ख़ुद गहरी मँझधार में !
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में !!

जिनके साथी आँधी-अंधड़, जिनकी राह पहाड़ियाँ,
उन पर न्यौछावर करता हूँ मैं अपनी फुलवारियाँ,
जिनके घर न दिया जलता, जिनसे प्रकाश नाराज़ है,
राज उन्हें सूरज पर करना मुझे सिखाना आज है,
तुम भी जाओ पानी का यह चीर बदल, आँजो नयन
अंगारों की शादी होगी सावन के त्यौहार में !
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में !!

छः रुबाइयाँ

५

(१)

जहाँ भी जाता हूँ वीरान नज़र आता है,
ख़ून में डूबा हर मैदान नज़र आता है,
कैसा है वक़्त जो इस दिन के उजाले में भी
नहीं इन्सान को इन्सान नज़र आता है !

(२)

चल रहे हैं जो उन्हें चलके डगर से देखो,
तैरनेवालों को तट से न, लहर से देखो
देखना ही है जो इन्सान में भगवान तुम्हें
आदमी को ही आदमी की नज़र से देखो !

(३)

एक दिन में ही अमृत सारा ज़हर बन जाये,
एक दिन में ही स्वर्ग उजड़ा यह घर बन जाये,
देवता बनने-बनाने की कोशिशें जो छोड़
सिर्फ़ इन्सान ही इन्सान अगर बन जाये !

(४)

आदमी ने वक़्त को ललकारा है,
आदमी ने मौत को भी मारा है,
जीते हैं आदमी ने सारे लोक,
आदमी आदमी से हारा है !

(५)

आदमी फ़ौलाद को पी सकता है,
आदमी चट्टान को सीं सकता है,
यह तो सब ठीक, मगर प्यार बिना
आदमी कहीं भी न जी सकता है !

(६)

जाये जिस ओर ज़माना तुम उसे जाने दो,
गा रहा हो जो वक़्त गीत उसे गाने दो,
चाहते ही हो बनाना जो नया हिन्दोस्तान
देश की मिट्टी को उठने दो मुस्कराने दो !

तुम दीवाली बनकर जग का···

६

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो,
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा !

सूनी है माँग निशा की चन्दा उगा नहीं
हर द्वार पड़ा खामोश सबेरा रूठ गया,
है गगन विकल, आ गया सितारों का पतझर
तम ऐसा है कि उजाले का दिल टूट गया,
तुम जाओ घर-घर दीपक बनकर मुस्काओ
मैं भाल-भाल पर कुंकुम बन लग जाऊँगा !

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा !!

कर रहा नृत्य विध्वंस, सृजन के थके चरण,
संस्कृति की इति हो रही, क्रुद्ध हैं दुर्वासा,
बिक रही द्रौपदी नग्न खड़ी चौराहे पर,
पढ़ रहा किन्तु साहित्य सितारों की भाषा,
तुम गाकर दीपक-राग जगा दो मुर्दों को
मैं जीवित को जीने का अर्थ बताऊँगा !

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा !!

इस क़दर बढ़ रही है बेबसी बहारों की
फूलों को मुस्काना तक मना हो गया है,
इस तरह हो रही है पशुता की पशु-क्रीड़ा
लगता है दुनियाँ से इन्सान खो गया है,
तुम जाओ भटकों को रास्ता बता आओ
मैं इतिहासों को नये सफ़े दे जाऊँगा !

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा !!

मैं देख रहा नन्दन-सी चन्दन-बगिया में
रक्त के बीज फिर बोने की तय्यारी है,
मैं देख रहा परिमल-पराग की छाया में
उड़कर आ बैठी फिर कोई चिनगारी है,
पीने को यह सब आग बनो यदि तुम सावन
मैं तलवारों से मेघ-मल्हार गवाऊँगा !

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा !!

जब खेल रही है सारी धरती लहरों से
तब कब तक अपना तट पर रहना संभव है ?
संसार जल रहा है जब दुख की ज्वाला में
तब कैसे अपने सुख को सहना संभव है
मिटते मानव औ' मानवता की रक्षा में
प्रिय ! तुम भी मिट जाना, मैं भी मिट जाऊँगा !

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा !!

दुनियाँ के घावों पर···

७

दुनियाँ के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है!

खड़े किनारे पर ही जो हँसते हुए
सुनते रहे पुकार डूबनेवालों की,
जिनकी वाणी बनकर कीर्ति नहीं गूँजी
तूफ़ानों के गाल चूमनेवालों की,
ऐसे बैरागी - सन्यासी रागों का
द्वार-द्वार पर अलख जगाना पाप है!

दुनियाँ के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है!!

पानी के ही ठंडे - ठंडे दर्पण में
रहे देखते जो जलते सूरज का तन
जिनके सर पर सेहरा बनकर नहीं सजा
सिंया हुआ काँटों से लहू-लुहान कफ़न,
ऐसे सर्द गुलाबों की मुर्दा ऋतु में
बुलबुल तेरा आना-जाना पाप है!

दुनियाँ के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है!!

जिन्हें ज्ञात यह नहीं कि गीतों की सीता
अग्नि-परीक्षा देती है अंगारों में,
है जिनको मालूम नहीं साहित्य सदा
फूल खिलाता है मुर्दा पतझारों में,
स्याही के ऐसे शुभ-नाम कलंकों का
गंगा-तट पर कुंभ नहाना पाप है !

दुनियाँ के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है !!

आया है तूफ़ान भयानक जब घर में
बैठे सजा रहे जो रूप-चित्रसारी,
लहरों ने जब मौन निमंत्रण भेजा है
बाँध उन्हें बैठी तब एक कली क्वाँरी,
ऐसे मल्लाहों की किश्ती पर चढ़कर
मस्ती तेरा तट पाजाना पाप है !

दुनियाँ के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है !!

कृति कवि की होती है पर कृति के पीछे
गाती है अपनी बनकर जग की पीड़ा,
रहता है चन्द्रमा नील नभ के घर में
किन्तु चाँदनी करती है भू पर क्रीड़ा,
मठ में बैठी जिसे न मठ की चिन्ता हो
उस मूरत को शीश झुकाना पाप है !

दुनियाँ के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है !!

तिमिर ढलेगा

८

मेरे देश उदास न हो फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा !

यह जो रात चुरा बैठी है चाँद-सितारों की तरुणाई,
बस तब तक कर ले मनमानी जब तक कोई किरन न आई,
खुलते ही पलकें फ़ूलों की, बजते ही भ्रमरों की वंशी
छिन्न-भिन्न होगी यह स्याही जैसे तेज़ धार से काई,
तम के पाँव नहीं होते वह चलता थाम ज्योति का अंचल
मेरे प्यार निराश न हो, फिर फ़ूल खिलेगा, सूर्य मिलेगा !
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा !!

सिर्फ़ भूमिका है बहार की यह आँधी पतझारोंवाली,
किसी सुबह की ही मंज़िल है रजनी बुझे सितारोंवाली,
उजड़े घर ये सूने आँगन, रोते नयन सिसकते सावन,
केवल हैं वह बीज कि जिनसे उगनी है गेहूँ की बाली,
मूक शान्ति ख़ुद एक क्रान्ति है, मूक दृष्टि खुद एक सृष्टि है
मेरे सृजन हताश न हो, फिर दनुज थकेगा, मनुज चलेगा !
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा !!

व्यर्थ नहीं यह मिट्टी का तप, व्यर्थ नहीं बलिदान हमारा,
व्यर्थ नहीं यह गीला अंचल, व्यर्थ नहीं यह आँसू-धारा,
है मेरा विश्वास अटल, तुम डाँड़ हटादो, पाल गिरादो
बीच समुन्दर एक दिवस मिलने आयेगा स्वयं किनारा,
मन की गति पग-गति बन जाये तो फिर मंज़िल कौन कठिन है?
मेरे लक्ष्य निराश न हो फिर जग बदलेगा, मग बदलेगा !
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा !!

जीवन क्या ?—तम भरे नगर में किसी रोशनी की पुकार है,
ध्वनि जिसकी इस पार और प्रतिध्वनि जिसकी दूसरे पार है,
सौ-सौ बार मरण ने सींकर होठ इसे चाहा चुप करना
पर देखा हर बार बजाती यह बैठी कोई सितार है,
स्वर मिटता है नहीं सिर्फ़ उसकी आवाज़ बदल जाती है
मेरे गीत उदास न हो हर तार बजेगा, कंठ खुलेगा !
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा !!

धरा को उठाश्रो, गगन को भुकाश्रो

६

दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाश्रो, गगन को भुकाश्रो !

बहुत बार आई-गई यह दिवाली
मगर तम जहाँ था वहीं पर खड़ा है,
बहुत बार लौ जल-बुझी पर अभी तक
कफ़न रात का हर चमन पर पड़ा है,
न फिर सूर्य रूठे, न फिर स्वप्न टूटे
उषा को जगाश्रो, निशा को सुलाश्रो !
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाश्रो, गगन को भुकाश्रो !!

सृजन-शान्ति के वास्ते है ज़रूरी
कि हर द्वार पर रोशनी गीत गाये
तभी मुक्ति का यज्ञ यह पूर्ण होगा,
कि जब प्यार तलवार से जीत जाये,
घृणा बढ़ रही है, अमा चढ़ रही है
मनुज को जिलाश्रो, दनुज को मिटाश्रो !
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाश्रो, गगन को भुकाश्रो !!

बड़े वेगमय पंख हैं रोशनी के
न वह बन्द रहती किसी के भवन में,
किया क़ैद जिसने उसे शक्ति-छल से
स्वयं उड़ गया वह धुँआँ बन पवन में,
न मेरा-तुम्हारा, सभी का प्रहर यह
इसे भी बुलाओ, उसे भी बुलाओ !
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ !!

मगर चाहते तुम कि सारा उजाला
रहे दास बनकर सदा को तुम्हारा,
नहीं जानते फूँस के गेह में पर
बुलाता सुबह किस तरह से अँगारा,
न फिर अग्नि कोई रचे रास इससे
सभी रो रहे आँसुओं को हँसाओ !
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ !!

चार विचार

१०

(१)

जो पुण्य करता है वह देवता बन जाता है,
जो पाप करता है वह पशु बन जाता है,
किन्तु जो प्रेम करता है वह आदमी बन जाता है !

(२)

जब मैंने प्रेम किया तब मुझे लगा कि जीवन आकर्षण है,
जब मैंने भक्ति की तब मुझे आभास हुआ कि जीवन समर्पण हैं,
किन्तु जब मैंने सेवा - व्रत लिया तब
मुझे पता चला कि जीवन सबसे पहले सर्जन है !

(३)

जब मैं बैठा था तब समझता था कि जीवन उपस्थिति है,
जब मैं खड़ा था तब कहता था कि जीवन स्थिति है,
किन्तु जब मैं चलने लगा तब गाने लगा 'जीवन गति है !'

(४)

जब तक मैं तुम्हें पुकारता रहा तब तक समझता रहा कि जीवन तुम्हारी आवाज़ है। और जब मैं स्वयं को पुकारने लगा तो कहने लगा कि जीवन अपनी ही आवाज़ है।

किन्तु जिस दिन से मैंने संसार को पुकारना शुरू किया है उस दिन से मुझे लगने लगा है कि जीवन मेरी और तुम्हारी नहीं, उन सब की आवाज़ है जिनकी कि कोई आवाज़ ही नहीं है!

उद्जन बम्ब के परीक्षण पर

११

अब हो जाओ तय्यार साथियो ! देर न हो
दुश्मन ने फिर बारूदी-बिगुल बजाया है,
बेमौसम फिर इस नये चमन के फूलों पर
सर कफ़न बाँधने वाला मौसम आया है !

फिर बनने वाला है जग मुरदों का पड़ाव
फिर बिकने वाला है लोहू बाज़ारों में
करने वाली है मौत मरघटों का सिंगार
सोने वाली है फिर बहार पतझारों में !

फिर सूरजमुखी सुबह के आनन की लाली
काली होने वाली है धूम-घटाओं से,
फिर नाज़ुक फूलों वाली धरती की थाली
भरने वाली है क़ब्रों-कफ़न चिताओं से

जिनके माथे की बेंदी मन की हँसी-ख़ुशी
जिनके कर की मेंहदी घर की उजियाली है,
जिनके पग की पायल आँगन की चहल-पहल
जिनकी पीली चुनरी होली-दीवाली है,

अपनी उन शोभा, सीता, राधा, लक्ष्मी के
फिर झुके घूँघटों के खुल जाने का डर है,
अपनी उन हरिनी-सी कन्याओं-बहिनों पर
खूँखार भेड़ियों के चढ़ आने का डर है!

सारी थकान की दवा कि जिनकी किलकारी
सब चिन्ताओं का हल जिनका चंचलपन है,
सारी साधों का सुख जिनका तुतलाता मुख
सारे बन्धन की मुक्ति कि जिनकी चितवन है,

अपने आँगन के उन शैतान चिराग़ों के
हाथों का दूध-खिलौना छिननेवाला है,
अपने दरवाज़े के उन सुन्दर फूलों से
दुश्मन भालों की माला बुननेवाला है!

जिन खेतों में बैठा मुस्काता है भविष्य,
जिन खलिहानों में लिखी जा रही युग-गीता,
जिस अमराई में झूल रहा इतिहास नया
जिन बाग़ों की हर ऋतुरानी है परिणीता,

उन सब पर एक बार फिर असमय-अनजाने
छानेवाली है स्याह-नक़ाबी ख़ामोशी,
उन सब पर एक बार फिर भरी दुपहरी में
आनेवाली है ज़हर-बुझाई बेहोशी!

वे पनघट जिनकी पाँव-फिसलनी सीढ़ी पर
छलकी जाने कितने नयनों की रस-गगरी,
वे कुंज-कदम्ब कि जिनकी ठंडी छाया में
लुट गईं न जाने किस-किसके मन की नगरी

वह 'ताज' कि जिसकी पूनोंवाली रातों में,
जागे चुम्बन जाने कितनी मुमताज़ों के,
वह यमुना-तट जिसकी लहरों में बँधे हुए
ग्रालिगन जाने कितने शोख़-तक़ाज़ों के,

वे चौपालें, चौपालों के जलते ग्रलाव
ग्रब तक कहानियाँ जहाँ पड़ीं 'बत्तीसी' की,
चुटकुले बीरबल के, खुसरो की पहेलियाँ
है ग्रब तक जिनकी हँसी जहाँ पर हँसती-सी,

वे चरागाह जिनकी हरयाली-मख़मल पर
ग्रपने कितने बैलों की घन्टी हिली-डुली,
वे बँबुरी-बन जिनके काँटों की नोंकों से
जाने कितने घावों को राहत-राह मिली,

लेकिन ग्रब उन पर चाँद नहीं मुस्कायेगा
ग्रब नहीं सजेगी वहाँ सितारों की चोली,
कूकते जहाँ कोयल न कभी थक पाती थी
गूँजेगी सिर्फ़ वहाँ ग्रब ख़ूनभरी गोली !

वे याद मदरसे होंगे, जिनके टाटों पर
जाने कितने टैगोर बैठकर पढ़ ग्राये,
भूली तो होंगी नहीं पाठशालायें वे
उपनिषद न जिनकी याद 'कौमुदी' कर पाये !

वह ज्ञान मगर होगा ग्रब घूरे की ढेरी,
वे छप्पर, वे खपरैलें धुँग्राँ उड़ायेंगी,
टैगोर - गोर्की - तुलसी की वे कवितायें
पथ पर दो-दो दानों को कर फैलायेंगी !

हाँ वह अपना छोटा सा तुलसी का बिरवा
जिस पर घर की हर चूड़ी अर्घ्य चढ़ाती है,
वह सैय्यद का आला जिस जगह कि हर मुश्किल
दो-चार बताशों में बस हल हो जाती है,

वे मन्दिर-मस्जिद, गिरजेघर, वे देवालय
जो युग-युग की विश्वास-भावना के प्रतीक,
इन्जील, कुरान, बाइबिल, गीता-रामायण
जो लिये जा रहे संस्कृति का रथ लीक-लीक

उन सब पर बुरी निगाह आज है दुश्मन की
उन सब पर आग बिछाने का उसका मन है,
रह जाये मानवता का नाम न शेष कहीं
ऐसा सैलाब बुलाने का उसका मन है !

वह जो पहाड़ पर खड़ा आँधियों को थामे
वह जो समुन्दरों को बाँहों में झुला रहा,
वह जो विधवा चट्टानों की भर रहा माँग,
वह जो रेगिस्तानों को पानी पिला रहा,

वह जो जवानियों पर उबाल बनकर छाया,
वह जो शिशु के हाथों का दही-बताशा है,
जल रहा द्वार की दीवट पर जो बन चिराग़
जो जग के सब इतिहासों की परिभाषा है,

कर रही अजन्ता पूजा जिसकी छेनी की,
यह ताजमहल जिसके हाथों का दर्पण है,
यह कुतुब-लाट जिसकी उँगली की करामात,
यह पिरामिडों का घर जिसका तन-रजकरण है,

व जो सितार का तार, बहारों की बहार,
वह जो कलियों-फूलों का जादू-टोना है,
वह जो बगिया का बौर, कौर सबके मुँह का,
वह जो रातों में चाँदी, दिन में सोना है,

वह जो बचपन का बचपन, यौवन का यौवन,
वह जो सिंदूर-संगीत, गीत है पायल का,
वह जो चुनरी का रंग, उमंगों का उभार,
वह जो नयनों की लाज, स्वप्न है काजल का !

वह जो मुस्करा रहा गेहूँ की बालों में,
वह जो उड़ रहा धुँआँ बनकर चिमनीघर से,
वह जो सीं रहा नदी की जलवाली साड़ी
वह छीन रहा जो मोती लहरों के कर से !

वह जिसके पैरों की परछाँई है ज़मीन,
वह जिसका चौड़ा-सा माथा है यह अकास,
वह जिसकी दसों उँगलियाँ दसों दिशायें हैं,
वह जिसका हँसना सृजन, क्रुद्ध होना विनाश,

मुस्कानोंवाला चन्दा जिसका कंठहार,
लपटोंवाला सूरज जिसका सिंहासन है,
बूंदोंवाला बादल जिसका तन-नीर-चीर,
अक्षय फूलोंवाला जिसका घर-आँगन है,

उस श्रम को, उस मानव के पुण्य पसीने को
दानव ने लेकर बम्ब हाथ ललकारा है,
सदियों की संस्कृति पर, सदियों के गौरव पर
लाशें बटोरनेवाला हाथ पसारा है !

लेकिन घबराने की है बात नहीं साथी !
एशिया धधकते हुए पहाड़ों का घर है,
है मर्द चीन के हाथ उधर दौज का चाँद
इस ओर हिमालय की मुट्ठी में दिनकर है !

धुँधलाये फिर न कभी रोशनी चिराग़ों की
मुरझाये फिर न कभी मिट्टी की शहज़ादी,
कजलाये फिर न कभी नथ नागासाकी की,
कुम्हलाये फिर न कभी हिरोशिमा की वादी,

फिर हवा कराहे नहीं घाव-नासूरों से
फिर महामारी-क्षय, ख़ून न चूसें गलियों का,
फिर फूलों की फ़सलों में फैले नहीं ज़हर
फिर पथ पर जाकर बिके न कुंकुम कलियों का,

यह हँसते खेत रहें, मुस्काते बाग़ रहें
यह ताने रहें झूलती मेघ मल्हारों की,
यह सुबह रचाये रहे महावर इसी तरह
यह रात सजे यूँ ही बारात सितारों की,

ऐसे ही घट छलके, ऐसे ही रस ढुलके,
ऐसे ही तन डोले, ऐसे ही मन डोले,
ऐसी ही चितवन हो, ऐसी ही चितचोरी
ऐसे ही भँवरा भ्रमें कली घूँघट खोले,

ऐसे ही ढोलक बजे, मँजीरे झंकारें,
ऐसे ही हँसें झुनझुने, बाजें पैंजनियाँ,
ऐसे ही झुमके झूमें, चूमे गाल बाल,
ऐसे ही हों सोहरें लोरियाँ रस-बतियाँ,

ऐसे ही बदली छाये, कजली अकुलाये,
ऐसे ही बिरहा-बोल सुनाये साँवरिया,
ऐसे ही होली जले, दिवाली मुस्काये,
ऐसे ही खिले-फले हरियाये हर बगिया,

ऐसे ही चूल्हे जलें, राख यह रहे गरम,
ऐसे ही भोग लगाते रहें महाबीरा,
ऐसे ही उबले दाल, बटोई उफ़नाये,
ऐसे ही चक्की पर गाये घर की मीरा,

इसलिये शपथ है तुम्हें तुम्हारे ही सर की
जिस रोज़ एशिया पर कोई बादल छाये,
वह शीश तुम्हारे ही हो जो सबसे पहले
दुश्मन के हाथों की तलवार मोड़ आये !!

आदि पुरुष

१२

संहार-सृजन के वज्र – अक्षरों में अक्षर
जब लिखी गई थी नहीं कथा जड़-चेतन की,
तब मैं ही था रच रहा एक नव सृष्टि यहाँ
चिर-चिर शाश्वत, चिर-चिर विराट् अपनेपन की !

संसार न था जब, तब मैं था संसार स्वयं
जब था न पवन, तब मैं था एक अनन्त श्वास,
जब नहीं जले थे अम्बर में रवि-शशि-उडुगन
तब एक दीप बन मैं ही था जग का प्रकाश !

जब आदि न था, तब अन्त बना मैं व्याप्त रहा,
कामना न जन्मी थी तब मैं था पूर्णकाम,
जब नहीं हुआ था भू-नभ का परिचय-परिणय
तब मैं ही था सम्पूर्ण सृष्टि का दृष्टि-धाम !

जब धर्म न था, धृति मैं धरती का प्राण रहा,
जब कर्म न था, तब मैं था कृति का महोल्लास,
जब भक्ति न उतरी थी श्रद्धा के आँगन में
अपने ही विरह-मिलन का था मैं रुदन-हास !

आश्रान्त उषा, आक्लान्त निशा, दिग्भ्रान्त दिशा,
ऋत, मरुत, सलिल-पावक, क्षिति शून्य अनन्त - अन्त
थे घूम रहे जिसकी आरती बने-से सब
मैं ही था ज्वालाम्बरी इन्दु वह ज्योतिवन्त !

पल-विपल, निमिष-क्षण, दिवस-मास, अब्दाब्द कल्प
बिखरे थे जो कालोदधि पर मुक्तादल-से,
मैंने ही गूँथे थे निशि-दिन की माला में
अपनी पलकों के मीलन-उन्मीलन छल से !

तम की हिमवती गुहा में जो चेतना सती
सोई थी सुप्त शिखा-सी चिर निष्कामव्रती
जागी थी जिस दिन मेरे मन के मन्मथ ने
रजवर्णी रति के रँग से श्वास रँगी रति की !

ध्वनि-वसना, स्वर-कर्णा, लय-वर्णा, गति-चरणा,
जो शून्य-समाधि लगाये बैठी थी वाणी
कवि-कविता, काव्य-छन्द गीतों में गूँज उठी
जिस दिन मुझसे बोला मेरे दृग का पानी !

सौन्दर्य-सत्य, आकृति-अभाव में जो अकृत्य—
बन स्वप्न कहीं बैठे थे निद्रा के द्वारे
मैंने ही मिट्टी को देकर आकार-सार
ला जन्म-मरण के वसन दिये उनको न्यारे !

कुन्तला-ज्योति-घन-कला-किरन-बाला चपला
जो सोई थी जड़ अंक पूर्ण निस्पन्द शान्त
मैंने ही नयनाकर्षण-शर से बेध उसे
दे दिया कल्पना का निवास-गृह विरह-प्रान्त !

रवि-शशि के दीप जला दृग के वातायन से
निशि-दिन पथ जिसका तकती थी वय की राधा
मैं ही था उसका आदि-पुरुष वह मनमोहन
वंशी की लय-ध्वनि में जिसने त्रिभुवन बाँधा !

पतझर के पीत-वसन धारण कर ऋतुम्भरा
जिसके वियोग में बनी योगिनी थी सदेह,
कलि-कुसुम-छन्द, मधु-गिरा-गंध, आनन्द-कन्द
मैं ही था उसका ऋतुपति मनभावन विदेह,

सीमाओं की सीमा, असीम की असीमता
लघु की लघुता, गुरु की गुरुता, तृण-सहस्रार
मुझमें ही व्याप्त रहे थे सब ऐसे जैसे
रजकण में गिरि को धारण करने का विचार !

पर सृष्टि-प्रसारण हित ही मैंने अनमाँगे
दे दिये मृत्तिका को जो अपने अश्रु-प्राण,
अब मुझे मिटाने का ही वह छल करती है
मेरे मन से अपने तन का कर तुलादान !

दो रुबाइयाँ

(१)

एक चीज़ है जो अभी खोके अभी खोनी है,
एक बात है जो अभी होके अभी होनी है,
ज़िन्दगी नींद है वह जागकर आने वाली
जो अभी सोके अभी सोई, अभी सोनी है !

(२)

रात इधर ढलती तो दिन उधर निकलता है,
कोई यहाँ रुकता तो कोई वहाँ चलता है;
दीप औ' पतंगे में फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है
एक जलके बुझता है, एक बुझके जलता है !

आज जी भर देखलो तुम चाँद को···

१४

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आये न आये !

दे रहे लौ स्वप्न भीगी आँख में
तैरती हो ज्यों दिवाली धार पर,
ओठ पर कुछ गीत की लड़ियाँ पड़ीं
हँस पड़े जैसे सुबह पतझार पर,

पर न यह मौसम रहेगा देर तक
हर घड़ी मेरा बुलावा आ रहा,
कुछ नहीं अचरज अगर कल ही यहाँ
विश्व मेरी धूल तक पाये न पाये !

आज जी भर देखलो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आये न आये !

ठीक क्या किस वक़्त उठ जाये क़दम
काफ़िला कर कूँच दे इस ग्राम से
कौन जाने कब मिटाने को थकन
जा सुबह माँगे उजाला शाम से,
काल के अद्वैत अधरों पर धरी
ज़िन्दगी यह बाँसुरी है चाम की
क्या पता कल श्वास के स्वरकार को
साज़ यह आवाज़ यह भाये न भाये !

आज जी भर देखलो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आये न आये !

यह सितारों से जड़ा नीलम-नगर
बस तमाशा है सुबह की धूप का,
यह बड़ा-सा मुस्कराता चन्द्रमा
एक दाना है समय के सूप का,
है नहीं आज़ाद कोई भी यहाँ
पाँव में हर एक के ज़ंजीर है
जन्म से ही जो पराई है मगर
साँस का क्या ठीक कब गाये न गाये।

आज जी भर देखलो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आये न आये !

स्वप्न-नयना इस कुमारी नींद का
कौन जाने कल सबेरा हो न हो,
इस दिये की गोद में इस ज्योति का
इस तरह फिर से बसेरा हो न हो,

चल रही है पाँव के नीचे धरा
और सर पर घूमता आकाश है
धूल तो संन्यासिनी है सृष्टि से
क्या पता वह कल कुटी छाये न छाये !

आज जी भर देखलो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आये न आये !

हाट में तन की पड़ा मन का रतन
कब बिके किस दाम पर अज्ञात है,
किस सितारे की नज़र किसको लगे ?
ज्ञात दुनिया में किसे यह बात है,
है अनिश्चित हर दिवस, हर एक क्षण
सिर्फ निश्चित है अनिश्चितता यहाँ
इसलिए सम्भव बहुत है प्राण ! कल
चाँद आये, चाँदनी लाये न लाये !

आज जी भर देखलो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आये न आये !

विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है···

१५

विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ!

विरहिणी थकी नींद तो चाहती है
अभी और कुछ देर ठहरे अँधेरा,
मगर ज्वाल-जोगी दिये की लगन है
कि हो आज पहले सुबह से सबेरा,
इसी द्वन्द्व में मैं पड़ा सोचता हूँ
कि सूरज बुलाऊँ कि चन्दा उगाऊँ!
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ?

सिसक साँस कहती यही रोज़ मुझसे
कि मिट्टी मिटाये मुझे जा रही है,
मगर देखता हूँ उधर बाग़ में तो
कली धूल में खिल रही, गा रही है,
दुरंगे नगर की, दुरंगी डगर पर
कहाँ बैठ रोऊँ, कहाँ बैठ गाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ ?

जनम से मरण की शिकायत यही है
"कि जीवन नहीं मानता हुक्म मेरा,"
कफ़न ने सदा ही कहा किन्तु रोकर
"कि है मौत से बस न मेरा-तेरा,"
सृजन-नाश के दो क्षणों से बँधा मैं
जनम पर हँसूँ या मरण पर रिझाऊँ !
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ ?

बसा मृत्तिका-पुतलियों में सपन जो
छुआ धूप ने तो किरन बन गया वह
लिया चूम जो चाँद ने भूल से तो
गिरा आँख से ओस-कन बन गया वह,
तुम्हीं फिर कहो स्वप्न के द्वार पर मैं
अँगारे बिछाऊँ कि तारे टकाऊँ !
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ ?

सुबह धूप का रूप घूँघट सजाये
जहाँ देखता था लगा फूल-मेला,
वहीं शाम अब ओढ़ चादर धुँये की
पड़ा रो रहा एक पतझर अकेला,
सुबह-शाम बन ढल रही ज़िन्दगी को
कि रोकर सुलाऊँ, कि हँसकर जगाऊँ !
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ ?

उषा जो सुबह हाथ मेंहदी रचाती
उसे पोंछ देता सदा सांध्य-तारा,
लगाती निशा भाल जो चन्द्र-टीका
उसे चाट जाता दिवस का अँगारा,
इसी भाँति मैं भी स्वयं मिट रहा जब
किसे फिर बनाऊँ किसे फिर मिटाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ किसे भूल जाऊँ ?

किसी एक तूफ़ान वाली लहर ने
दिया था मुझे फेंक कल इस किनारे,
लहर पर वही अब बिना कुछ बताये
लिये जा रही है मुझे उस किनारे,
समय-सिन्धु में एक तृण हूँ, पता क्या
कहाँ डूब जाऊँ, कहाँ पार पाऊँ !
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद करलूँ, किसे भूल जाऊँ ?

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन ?

१६

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं !

किस एक साँस से गाँठ जुड़ी है जीवन की ?
हर जीवित से ज्यादा यह प्रश्न पुराना है,
कौन-सी जलन जलकर सूरज बन जाती है
बुझकर भी दीपक ने यह भेद न जाना है,
परिचय करना तो है बस मिट्टी का सुभाव
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बनकर,
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया महमान, गया पहचाना है,

खिल-खिलकर हँस-हँसकर झर-झरकर काँटों में
उपवन का ऋण तो भर देता हर फूल मगर
मन की पीड़ा कैसे ख़ुशबू बन जाती है
यह बात स्वयं पाटल को भी मालूम नहीं !

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं !

किस क्षण अधरों पर कौन गीत उग आयेगा
खुद नहीं जानती गायक की स्वरवती श्वास,
कब घट के निकट स्वयं पनघट उठ आयेगा
यह मर्म बताने में है चिर असमर्थ प्यास,
जो जाना—वह सीमा है सिर्फ़ जानने की
सत्य तो अजाने ही आता है जीवन में
उस क्षण भी कोई बैठा पास दिखाता है
जब होता अपना मन भी अपने नहीं पास,

जिस उँगली ने उठकर यह अंजन आँजा है
उसका तो पता बता सकते कुछ नयन, किन्तु
किस आँसू से पुतली उजली हो जाती है
यह बात स्वयं काजल को भी मालूम नहीं !

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन !
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं !

'क्यों सूरज जल-जलकर दिन-भर तप करता है ?
जब पूछा संध्या से वह चाँद बुला लाई,
क्यों ऊषा हँसती है निशि के लुट जाने पर
जब एक कली से कहा खिली वह मुस्काई,

हर एक प्रश्न का उत्तर है दूसरा प्रश्न
उत्तर तो सिर्फ़ निरुत्तर ही है इस जग में
जब-जब रोई है लाश गोद में मरघट की
तब-तब है बजी कहीं पर कोई शहनाई,

हर एक रुदन के साथ जुड़ा है एक गान
यह सत्य जानता है हर एक सितार, मगर
किस घुँघरू से कितना संगीत छलकता है
यह बात स्वयं पायल को भी मालूम नहीं !

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं !

उस रोज़ राह पर मिला एक टूटा दर्पण
जिसमें मुख देखा था हर चाँद-सितारे ने,
काजल-कंघी, सेंदुर-बिन्दी से बार-बार
सिंगार किया था हँस-हँस साँझ-सकारे ने,
लेकिन टुकड़े-टुकड़े होकर भी वह मैंने
देखा सूरज से अपनी नज़र मिलाये था,
जैसे सागर पर हाथ बढ़ाया हो मानों
बुझते-बुझते भी किसी एक अंगारे ने

मैंने पूछा इतना जर्जर जीवन लेकर
कैसे कंकड़-पत्थर की चोटें सहता तू ?
वह बोला "किस चोट से चोट मिट जाती है ?
यह बात स्वयं घायल को भी मालूम नहीं !"

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं !

वह द्वार सुबह ने खोल दिया

१७

मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर में रहूँ अकेला, पर—
जो द्वार शाम ने बन्द किया, वह द्वार सुबह ने खोल दिया !

मन पर तन की साँकल देकर
सोता था प्राणों का पाहुन,
पैताने पाँव दबाते थे
बैठे चिर जागृत जन्म-मरण,
सिरहाने साँसों का पंखा
झलती थी खड़ी-आयु चंचल,
द्वारे पर पहरेदार बने
थे घूम रहे रवि, शशि, उडुगन,

फिर भी चितवन का एक चोर फेंक ही गया ऐसा जादू
अधरों ने मना किया लेकिन आँखों ने मोती रोल दिया !
जो द्वार शाम ने बन्द किया, वह द्वार सुबह ने खोल दिया !

जीवन पाने को शलभों ने
जा रोज़ मरण से किया प्यार,
चन्दा के होठ चूमने को
दिन ने चूमे दिन भर अँगार
निज देह गलाकर जब बादल
हो गया स्वयं अस्तित्वहीन,
आ सकी तभी धरती के घर
सावन-भादों वाली फुहार,

दुनिया दुकान वह जहाँ खड़े होने पर भी है दाम लगा
हर एक विरह ने रो-रोकर, हर एक मिलन का मोल दिया !
जो द्वार शाम ने बन्द किया, वह द्वार सुबह ने खोल दिया !

जब ख़ाली थे यह हाथ
हाथ था इनमें हर कठिनाई का,
जब सादा था यह वस्त्र
ज्ञान था मुझे न छूत-छुआई का,
लेकिन जबसे यह पीताम्बर
मैंने ओढ़ा रेशम वाला
डर लगता है मुझको अंचल
छूने में धूप-जुन्हाई का

बस वस्त्र बदलते ही मैंने यह कैसा परिवर्तन देखा
जिस रस को दुख ने अमृत किया, उसमें सुख ने विष घोल दिया !
जो द्वार शाम ने बन्द किया, वह द्वार सुबह ने खोल दिया !

चाँदनी टूट जब बनी ओस
ले गई उसे चुन धूप कहीं,
संध्या ने दिये जलाये तो
तम भी रह सका कुरूप नहीं,

फूलों की धूल मले शरीर
जब पतझर बगिया से निकला,
तब मिला द्वार पर खड़ा हुआ
उसको वसन्त अपरूप वहीं,

हर एक नाश के मरघट में निर्माण जलाये है दीपक
जब-जब आँगन ख़ामोश हुआ, तब-तब उठ बचपन बोल दिया !
जो द्वार शाम ने बन्द किया, वह द्वार सुबह ने खोल दिया !

एक विचार

१८

फ़ूल के साथ काँटे इसलिए हैं कि दुनिया
सौन्दर्य को देखे तो पर छू न सके,
प्रकाश के साथ ताप इसलिए है कि
दुनिया उसे पाये तो पर रख न सके,
इसी प्रकार कवि के गीत में वेदना
इसलिए है कि दुनिया उसे गाये तो पर भूल न सके !

दो रुबाइयाँ

१६

(१)

ज़िन्दगी हर जगह रही तो पर रही न गई,
बात ऐसी थी वह कही तो पर कही न गई,
कुछ इस तरह से कटी तेरी याद में हर रात
जैसे कोई पीर सही तो हो पर सही न गई !

(२)

पीर ऐसी कि घटा छाई है,
ठंडी यह साँस ही पुरवाई है,
तुझको मालूम क्या है आज यहाँ
बरखा बिना बादलों के आई है !

चिर विरहिणी

२०

बज चुकी हज़ारों बार मिलन की शहनाई
कर चुकी कोटि शृंगार धूल वाली काया,
लेकिन यह एक विरहिणी है मेरे घर में
आज तक न जिसका परदेसी प्रियतम आया !

सदियाँ सोईं, खोई इतिहासों की स्याही
हो गये मूक सौ-सौ कवि तुलसी-सूरदास,
पर अक्षयरूपा ऐसी राजकुमारी यह
अब तक जिसको पी से मिलने की लगी आस !

लाखों संध्याओं का सुहाग-सिन्दूर झरा
लाखों रातों के हार सितारे टूट गये,
लेकिन इस गीली पलकों वाली गोपी के
जब-जब पोंछे आँसू भर आये नये-नये !

अनगिन बसन्त आँगन में खिले, झरे, रोये,
अनगिन बचपन ले चाँद खेल आये द्वारे,
अनगिन जन्मों की थकन चरण दाबते थकी
पर सोये अब तक नयन न इसके निंदियारे !

जाने किस मन-मोहन की मुरली सुन छिन-छिन
बैठी रहती यह नयनों के यमुना-तट पर,
जाने किस नट-नागर की सुधि-गागर थामे
जब देखो—प्यासी खड़ी हुई हैं पनघट पर !

होते ही साँझ सिसकने लगती साँसों में
शशि की खिड़की पर बैठी रात बिताती है,
भोर के साथ ही गीले फूलों में छिपकर
हर एक हवा से पाती कहीं पठाती है !

जो बोल बोल देती बन जाता महाकाव्य
सुन लेती जो ध्वनियाँ, हो जाती हैं श्रुतियाँ,
जो आँसू पोंछ छिटक देती हैं त्रिभुवन में
वे नभ में तारे, भू पर कहलाते कलियाँ !

यह चिर वियोगिनी कौन कहाँ से आई है ?
किस छली श्याम की यह मतवाली मीरा है ?
यह मिट्टी की माया, या छलना श्वासों की ?
या मेरी ही आत्मा यह मिलन-अधीरा है !

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !

२१

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !

बाँसुरी से बिछुड़ जो गया स्वर उसे
भर लिया कंठ में शून्य आकाश ने,
डाल विधवा हुई जो कि पतझार में
माँग उसकी भरी मुग्ध मधुमास ने,

हो गया कूल नाराज़ जिस नाव से
पा गई प्यार वह एक मँझधार का,
बुझ गया जो दिया भोर में दीन-सा
बन गया रात सम्राट् अँधियार का,

जो सुबह रंक था, शाम राजा हुआ
जो लुटा आज कल फिर बसा भी वही,
एक मैं ही कि जिसके चरण से धरा
रोज़ तिल-तिल धसकती रही उम्र भर !

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !

प्यार इतना किया ज़िन्दगी में कि जड़–
मौन तक मरघटों का मुखर कर दिया,
रूप-सौन्दर्य इतना लुटाया कि हर
भिक्षु के हाथ पर चन्द्रमा धर दिया,

भक्ति-अनुरक्ति ऐसी मिली, सृष्टि की–
शक्ल हर एक मेरी तरह हो गई,
जिस जगह आँख मूँदी निशा आ गई
जिस जगह आँख खोली सुबह हो गई,

किन्तु इस राग-अनुराग की राह पर
वह न जाने रतन कौन-सा खो गया ?
खोजती-सी जिसे दूर मुझसे स्वयं
आयु मेरी खिसकती रही उम्र भर !

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !!

भेष भाये न जाने तुझे कौन-सा ?
इसलिये रोज़ कपड़े बदलती रही,
किस जगह कब कहाँ हाथ तू थाम ले
इसलिये रोज़ गिरती सँभलती रही,

कौन-सी मोह ले तान तेरा हृदय
इसलिये गीत गाया सभी राग का,
छेड़दी रागनी आँसुओं की कभी
शंख फूँका कभी क्रान्ति का, आग का,

किस तरह खेल क्या खेलता तू मिले
खेल खेले इसी से सभी विश्व के
कब न जाने करे याद तू इसलिये
याद कोई कसकती रहा उम्र भर !

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !!

रोज़ ही रात आई गई, रोज़ ही
आँख झपकी, मगर नींद आई नहीं,
रोज़ ही हर सुबह, रोज़ ही हर कली
खिल गई तो मगर मुस्कराई नहीं,

नित्य ही रास बृज में रचा चाँद ने
पर न बाजी मुरलिया कभी श्याम की,
हर तरह उर-अयोध्या बसाई गई
याद भूली न लेकिन किसी राम की

हर जगह ज़िदगी में लगी कुछ कमी
हर हँसी आँसुओं में नहाई मिली,
हर समय, हर घड़ी, भूमि से स्वर्ग तक
आग कोई दहकती रही उम्र भर !

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !!

खोजता ही फिरा पर अभी तक मुझे
मिल सका कुछ न तेरा ठिकाना कहीं,
ज्ञान से बात की तो कहा बुद्धि ने
'सत्य है वह मगर आज़माना नहीं,'

धर्म के पास पहुँचा पता यह चला
मन्दिरों मस्जिदों में अभी बन्द है,
जोगियों ने जताया कि जप-जोग है,
भोगियों से सुना भोग-आनन्द है,

किन्तु पूछा गया नाम जब प्रेम से
धूल से वह लिपट फूटकर रो पड़ा,
बस तभी से व्यथा देख संसार की
आँख मेरी छलकती रही उम्र भर !

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !!

सावन के त्यौहार में

२२

तूने मुझको ऐसे लूटा है इस भरे बजार में
चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्यौहार में !

मैं तो आई थी खरीदने हरीक-बेंदी भाल की,
कच्ची चूड़ी किन्तु पिन्हादी तूने सोलह साल की,
दाम लिया कुछ नहीं छलीं ! पर छल मुझसे ऐसा किया
गाँठ टटोली तो देखा है पूँजी लुटी त्रिकाल की,
उन नयनों की चितवन जाने बिन बोले क्या कह गई
डूबी मेरी नींद सदा को मेरी ही दृग-धार में !

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्यौहार में !

अब तो निशि दिन नयन खड़े रहते तेरे ही द्वार पर
उठ-उठ पाँव दौड़ जाते हैं किसी नदी के पार पर
हो इतनी बदनाम गई इस चोरी-चोरी प्रीति में,
गली-गली हँसती है मेरे काजल पर, शृंगार पर,
बहुत चाहती लोग न जानें मेरे-तेरे नेह को
तेरा ही पर नाम अधर जपते हर-एक पुकार में !

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्यौहार में !

आये लाखों लोग ब्याहने मेरी क्वाँरी पीर को,
पर कोई तस्वीर न भाई घायल हृदय अधीर को,
बात चली जब-जब विवाह की सिसका आँसू आँख का,
रात-रात भर रही कोसती नथनी श्वास-समीर को,
कैसे किसके गले डाल दूँ माला अपने हाथ से
मैं तो अपनी नहीं, धरोहर हूँ तेरी संसार में !

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्यौहार में !

सौ-सौ बार द्वार आई मधुऋतु ले हँसी पराग की,
एक न दिन भी पर मुस्काई ऋतु मेरे अनुराग की,
लाखों बार घटा ने बदली बिजली वाली कंचुकी
दमकी मेरे माथ न अब तक टिकुली किन्तु सुहाग की,
कैसे काटूँ रात अकेली, कैसे झेलूँ दाह यह
बारी प्रीति सयानी होने वाली है दिन चार में !

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्यौहार में !

पकी निबौरी, हरे हो गये पीले पत्ते आम के,
लिये बादलों ने हाथों में हाथ झुलसती घाम के,
भरे सरोवर-कूप, लग गईं नदियाँ सागर के गले,
खिले बाग़ के फूल, मिले आ पथिक सुबह के शाम के,
कैसे तुझसे मिलूँ मगर मैं जनम-जनम के मीत ओ !
चुन रक्खा है मुझे साँस ने मिट्टी की दीवार में !

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्यौहार में !

उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

उससे लगन लगाई जिसका
नाम न जाना, ग्राम न जाना,
उस पर उमर गँवाई जिसको
पाना है खुद को खो आना,
उस सँग खेला खेल कि जिसका
जन्म विरह है, मरण मिलन है,

उससे जोड़ी गाँठ न जिसको ज्ञात कि बंधन क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

बृज में श्याम बसे राधा का,
गोकुल में गोपी का ग्वाला,
मेरे पी का पता न कोई
कहाँ बिछाऊँ मैं मृगछाला,
किससे पूछूँ किसे बुलाऊँ
किस-किस डगर भभूत रमाऊँ

उसे समर्पित हूँ न जिसे यह ज्ञात समर्पण क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

मथुरा ढूँढ़ी, काशी ढूँढ़ी,
ढूँढ़ फिरी जीवन-जग सारा,
उस छलिया का गेह न पाया
साँस-साँस ने जिसे पुकारा,
छिल-छिल छाले गये पाँव के
तार-तार हो गई चुनरिया,

उस छवि पर हूँ मुग्ध न जिसको ज्ञात कि दर्पन क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

भूख भुलाई, प्यास भुलाई
हँसी खो गई, खुशी खो गई,
निद्रा रूठी, जागृति छूटी
सुबह-शाम एक-सी हो गई,
भोग न भाया, जोग न भाया
पूजन-जप कुछ नहीं सुहाया,

उसकी हूँ प्रेयसी न जिसको ज्ञात प्रदर्शन क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

सावन गरजा, भादों बरसा,
दामिनि देख गगन बौराया,
मेरे मन की बगिया में पर
एक न दिन भूला पड़ पाया,
कौन पीर मेरी पहचाने
कौन दरद-दुख मेरा जाने

उससे होली खेली जिसको ज्ञात न फागुन क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

२४

आज गगन में सावन बनकर
फिर घिर आई याद तुम्हारी !

ज़रा पुरा था घाव कि छूकर
हरा कर गई फिर पुरवाई,
झपका ही था दर्द कि सहसा
बादल ने आवाज़ लगाई,

तनिक चुपा था हिया कि आकर
निठुर पपीहा पिया कह उठा,
कुछ सूखी थी सेज कि नभ ने
बूँदों की बाँसुरी बजाई

सिसकी साँस, आँख बरसी
तरसी पुतली, बँध गई हिचकियाँ
किस-किस तरह न जाने मेरे
घर अकुलाई याद तुम्हारी !

खटका कहीं किवाड़, धड़कने लगी
विकलता रह-रह कर छाती,
गूँजी कहीं मल्हार, बुझ गई
काँप काँप दीपक की बाती,

बिखरी कोई बूँद, बिखर झर
गई गुँथे सपनों की माला—
भटकी कोई गंध, हरहरा
उठी नयन-नदिया बरसाती,

छूटा धीरज-डांड़, बह गई
अनजाने सागर में नैया,
जाने कहाँ-कहाँ जा कर
डूबी-उतराई याद तुम्हारी !

सपन हवन हो गए कटी जब
नहीं किसी विधि रात उदासी,
अश्रु यती बन गए थमी जब
नहीं बरसती पुतली प्यासी,

धर-धर पर्वत दिए वक्ष पर
जब-जब हृदय अधीर कराहा—
भर-भर लिए अंगार न सोई
किसी तरह जब बाँह बिसासी,

कभी अश्रु ने, कभी जलन ने,
कभी नयन ने, कभी सपन ने,
तुम्हें पता क्या तुम बिन किस-
किस ने बहलाई याद तुम्हारी !

आया बचपन याद, समय के
सजे खिलौने चूर हो गए,
एक न दो सारे-के-सारे
खेल खिलाड़ी दूर हो गए,

वर्तमान के घर आ कर
उतरी कोई डोली अतीत की–
जितने क्षण थे शेष उमर के
जाने को मजबूर हो गए,

कहीं जनम बन, कहीं मरण बन,
कहीं धूप बन, कहीं छाँव बन,
जाने कितनी बार यहाँ
भूली-भरमाई याद तुम्हारी !

रूठ गईं फिर नींद, गईं तुम
बोल कोयली बन फिर बन में,
तपन बढ़ी तन की जुगनू बन
चमक गईं तुम फिर जीवन में,

फिर दामिनि दमकी, तुमने फिर
चितवन से करली चितचोरी,
फिर से छाई घटा, तुम्हारे
कुन्तल फिर छा गये नयन में,

नैन तुम्हारे, बैन तुम्हारे–
केश तुम्हारे, वेश तुम्हारे–
सबको लाई साथ तुम्हीं को
सिर्फ न लाई याद तुम्हारी

आज गगन में सावन बनकर
फिर घिर आई याद तुम्हारी !!

चाह मंज़िल की सिर्फ़

२५

चाह मंज़िल की सिर्फ़ उसके इरादों से न तौल,
नद की गहराई को बस उसके निनादों से न तौल
और गर तुझको परख करनी पड़े कविता की
कस उसे दिल पै ज़रा वादों-विवादों से न तौल !

पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !

२६

पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !

कुंज-कुंज झूम उठे, बजी भृंग-शहनाई,
पात-पात थिरक उठे, डार-डार बौराई,
गुँथे कोटि-कोटि हार पिया नहीं आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !!

घर आई पुरवाई, अकुलाई सेज-सेज,
शरमाई बादल को पत्र धरा भेज-भेज,
उत्तर पर दूर पार पिया नहीं आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !!

रेशम के रस-हिंडोल गली-गली झूले,
मेघन के गीत फूल कंठ-कंठ फूले,
गूँजी दिशि-दिशि मल्हार पिया नहीं आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !!

घुमड़-घुमड़ गरजे घन, उमड़-उमड़ आये मन,
सिसक-सिसक उठे साँस, बरस-बरस पड़ें नयन
भींग गये द्वार-द्वार पिया नहीं आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !!

बिखर गई स्वप्न-माल, झरी अश्रु लड़ी-लड़ी,
खिड़की पर रात-रात बूंद जगी खड़ी-खड़ी,
घड़ी-घड़ी इन्तज़ार पिया नहीं आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !!

गगन बना कृष्ण और प्रकृति बनी राधा,
यमुना-तट रास रचा कौन द्वैत-बाधा,
मेरा सूना सिंगार पिया नहीं आये !!
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये !!

२७

जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया !

जनम-जनम से तुम्हें खोजता था मैं ओ मेरे अभिमानी !
आज तुम्हें जाना तो मुझको मेरी शक्ल लगी अनजानी
पर इससे भी बढ़कर अचरज हुआ कि जब पूजन-वेला में
भक्ति तुम्हारी मूर्ति बन गई, मन्दिर मर्त्य शरीर बन गया !
जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया !

तुम्हें छू लिया था सूरज ने वह देखो अब तक जलता है,
झाँकी भर देखी थी शशि ने वह अब तक आँसू ढलता है,
बादल को था गर्व बहुत वह धो ही लेगा चरण तुम्हारे
हाथ बढ़ाते ही पर उसका सारा जीवन नीर बन गया !
जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया !!

तुम्हें चूमने गया शलभ तो करना पड़ा भस्म उसको तन
रूप देख आया सो खुद हो गया अरूप रूप का दर्पण
की ही थी आरती अग्नि ने बुझना पड़ा धूम्र बन उसको
तुम्हें खोजते घर-घर खुद ही बेघरबार समीर बन गया !
जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया !!

तुमने किसे बुलाया जो मरघट से लौट पड़ा जग सारा
कौन तिराई तरी कि खुद ही मिलने को चल पड़ा किनारा
क्रीड़ा की वह कौन सृष्टि के आँगन में उस दिन जो छिन में
पद-रज झरकर धरा बन गई, अम्बर उड़कर चीर बन गया !
जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया !!

२८

तुझसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई !
साँस-साँस बन गई सुमिरनी,
मृगछाला सब-की-सब धरिणी,
क्या गंगा, कैसी वैतरणी,
भेद न कुछ कर पाई,
दहाई बनी इकाई !
तुझ से लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई !!
दर्द बिछौना, देह अटारी,
रोम-रोम आरती उतारी,
पलक भिगोई, अलक सँवारी,
पर चाँदनी न छाई,
अमावस ऐसी आई !
तुझसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई !!
साथी छोड़े, संगी छोड़े,
जनम-जनम के बन्धन तोड़े,
बदनामी से रिश्ते जोड़े,
तब तुझ तक आ पाई,
न कर अब तो निठुराई !
तुझसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई !!

जिस दिन तेरी याद न आई···!

२९

सुबह न आई, शाम न आई जिस दिन तेरी याद न आई !
जिस दिन तड़पे प्राण न उस दिन
देह लगी मिट्टी की ढेरी,
जिस दिन सिसकी साँस न उस दिन
उम्र हो गई कुछ कम मेरी,
बरसी जिस दिन आँख न, उस दिन
गीत न बोले, अधर न, डोले,
हँसी बिकाई, खुशी बिकाई, जिस दिन तेरी याद न आई !
सुबह न आई, शाम न आई जिस दिन तेरी याद न आई !!
धुँधलाया सूरज का दर्पण,
कजलाई चन्दा की बेंदी,
मूक हुई दुपहर की पायल,
रूठ गई संध्या की मेंहदी,
दिवस-रात सब लगे पराये,
लुटे-लुटाये स्वप्न-सितारे,
छटा न छाई, घटा न छाई, जिस दिन तेरी याद न आई !
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई !!

फिरते रहे नयन बौराये
कभी भवन में, कभी भुवन में,
रही कसकती पीड़ा कोई,
इस क्षण तन में, उस क्षण मन में
जग-जगकर काजल अलसाया,
चल-चलकर अंचल थक आया,
हाट न पाई, बाट न पाई, जिस दिन तेरी याद न आई !
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई !!
गुमसुम बैठी रही देहरी,
ठिठका-ठिठका आँगन द्वारा,
सेज लगी काँटों की साड़ी
और अटारी कज्जल-कारा,
अगरु-गंध हिम-लहर हो गई,
चन्दन-लेप ताप तक्षक का,
धूप न भाई, छाँह न भाई जिस दिन तेरी याद न आई !
सुबह न आई, शाम न आई जिस दिन तेरी याद न आई !!
गली-गली ने आँखें फेरीं,
गाँव-गाँव ने पत्थर मारे,
फूल-फूल ने धूल उड़ाई
शूल-शूल ने घाव उघारे,
गई जहाँ भी साँस, गई-
ठुकराई हर घर से, हर दर से
दुनिया ने दुश्मनी निभाई जिस दिन तेरी याद न आई !
सुबह न आई शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई !!

तब तुम आये

३०

तब तुम आये !
निरख निरख कर राह रात-दिन,
काल-पवन के पल छिन गिन-गिन,
युग-युग से दर्शन के प्यासे जब नयना पथराये !
तब तुम आये !!

कैसे पूजा करे तुम्हारी
मेरा व्याकुल विरह-पुजारी,
मन्दिर के पट खुले फूल जब थाली के मुरझाये !
तब तुम आये !!

बहुत हो चुका तव पद-वन्दन,
अब तुम करो हमारा पूजन,
जिससे मेरी मूर्ति तुम्हारी ही मूरत बन जाय !
तब तुम आये !!

३१

प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो !

प्राण को तो प्राण ही बस जानता है
हृदय को केवल हृदय पहचानता है,
तुम विरह का दाह चुम्बन से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो !

आँसुओं की बूँद कब घन ने चुनी है,
भूमि की आवाज़ नभ में अनसुनी है,
तुम धरा की प्यास सावन से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो !!

रूप-छवि तो आँख का छल छन्द भ्रम है,
यह परस यह दरस आकर्षण चरम है,
भक्त की तुम भक्ति दर्शन से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो !!

रजकणों में सिर्फ है प्रतिबिम्ब झलमल,
चाँद नभ में, है घटों में नीर केवल
तुम पिया का रूप दर्पण से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो !!

३२

तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ़ मन्दिर थरथराता रह गया !

स्वप्न की डोली उठा आँसू चले
धूल फूलों की जवानी हो गई,
शाम की स्याही बनी दिन की ख़ुशी
देह की मीनार पानी हो गई,
तू गया क्या—हाय बेमौसम यहाँ
एक बादल डबडबाता रह गया !

तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ़ मन्दिर थरथराता रह गया !!

हाथ जब थामे खड़ा था पास तू
पाँव पर मेरे झुका संसार था,
हर नज़र मेरे लिए बेचैन थी
हर कुसुम मेरे गले का हार था,
तू नहीं, तो कुछ खिलौने के लिए
एक बचपन छटपटाता रह गया।

तू उठा तो उठ गई सारी सभा !
सिर्फ़ मन्दिर थरथराता रह गया !!

दर्द दिया है

प्यार दुनियाँ ने बहुत मुझको किया,
पर लगन तुझसे लगी टूटी नहीं,
लाल-हीरे भी बहुत पहने मगर
मूर्ति तेरी हाथ से छूटी नहीं,
क्या कहूँ ? हर आइने को किस लिए
शक्ल मैं तेरी दिखाता रह गया !

तू उठा तो उठ गई सारी सभा !
सिर्फ़ मन्दिर थरथराता रह गया !!

कल विदा जो ले गया था घाट से
खिल गया है वह कमल फिर ताल में,
नीम से कल जो निबौरौ थी छुटी
है लगी वह झूलने फिर डाल में
एक मैं ही जो यहाँ तुझसे बिछुड़
रोज़ आता, रोज़ जाता रह गया !

तू उठा तो उठ गई सारी सभा !
सिर्फ़ मन्दिर थरथराता रह गया !!

३२

ओ बादर कारे !

घुमड़-घुमड़ पल-पल छिन-छिन में,
बरसो मत मेरे आँगन में,
सावन आज बने खुद मेरे नयना मतवारे !
ओ बादर कारे !

सुन-सुन गरज-गुहार तुम्हारी,
कँप-कँप उठती सेज-अटारी,
चौंक-चौंक पड़ते हैं सुधि के सपने निंदियारे !
ओ बादर कारे !

वैसे ही काली निशि मेरी,
घोल रहे तुम और अँधेरी,
डर है डूब न जायँ सदा को नभ के सब तारे !
ओ बादर कारे !

जाने कहाँ-कहाँ का जल भर,
तृण-तृण पर झरते तुम झर-झर
आज तनिक उनकी पलकों पर—
जाकर बरसा दो मेरे भी दो आँसू खारे !
ओ बादर कारे !

देख जिन्हें शायद उन्मन बन,
क्षण भर यह सोचे उनका मन,
इसी तरह गल-ढलकर निशि दिन—
उन बिन कोई प्राण देह बस बूँदों की धारे !
ओ बादर कारे !

जा में दो न समायँ

३४

अर्धरात्रि,
अम्बर स्तब्ध शांत,
धरा मौन······सन्नाटा,

× × ×

थप···थप···थप,
"द्वार पर कौन है ?"
"मैं हूँ, तुम्हारा एक याचक,"
"किस लिए आए हो ?"
"एक दृष्टि, दान हेतु,"
"नहीं, नहीं, जाओ, लौट जाओ, यहाँ दान नहीं मिलता है,
"भिक्षु और दाता के बीच जो परदा है,
जिस दम वह जलता है,
तभी द्वार खुलता है,"
······और द्वार बन्द रहा,

× × ×

थप···थप···थप
"द्वार पर कौन है ?"
"मैं हूँ तुम्हारा ही भक्त एक,"
"आशय क्या ?"
"अपने भगवान का ही दरस तनिक पाना है,
और भोर होते हा वापस लौट जाना हैं,"
'नहीं, नहीं,
भक्त भगवान यहाँ दो के लिए ठौर नहीं,
दर्शन जो पाना तो अभी हुई भोर नहीं,"
बन्द द्वार बन्द रहा, हुआ कोई शोर नहीं,

× × ×

थप···थप···थप
"कौन है ?"
उत्तर नहीं,
"कौन है ?"
उत्तर नहीं,
"कौन है ?"
"वही, जो भीतर है बोल रहा,
दरपन बन रूप जिसका बाहर है डोल रहा,
घूँघट उठाकर जो दरवाज़ा खोल रहा"
भ्रम का जो काजल था धुल गया,
परदा उठा, सूरज सा खिल गया,
ग्रौर बन्द द्वार स्वयं खुल गया।

—एक अज्ञात सूफ़ी कवि की कविता का भावानुवाद

मैं तो तेरे पूजन को···

३५

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खड़ा संसार !

मैं तो सुनता था कि सभी से तेरी अलग डगर है,
लेकिन जाना आज कि तेरा चौराहे पर घर है,
बात न थी यह ज्ञात कि मठ में मूरत भर है तेरी
और स्वयं तू भरी भीड़ में खेल रहा बाहर है,
तू क्या है कुछ समझ न पाया, केवल इतना देखा
माला तो थी एक, पहनने वाले किन्तु हज़ार
इसी सोच में बिखर झर गया साँसोंवाला हार !

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खड़ा संसार !

दर्पण तो था एक देखने वाले कोटि नयन थे,
एक ज्योति से ही ज्योतित सब धरती के आँगन थे,
एक श्वास पर लिये गोद में लाखों जन्म खड़ी थी
एक बूंद से प्यास बुझाने आये सौ सावन थे,
किसे झुकाऊँ शीश कि जब तक मैं कुछ सोच-बिचारूँ
मेरा ही धर रूप हो गईं प्रतिमायें साकार
पहचाना ख़ुद को तब जब नयनों से झरी फुहार !

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खड़ा संसार !

कहता था संसार मर्त्य का कर न तुझे छू पाता,
मुझे लगाने गले मगर तू दौड़ा भुजा बढ़ाता,
बोला था जड़ ज्ञान वायु की भी तुझ तक न पहुँच है,
दिखा मुझे तू किन्तु धूल में हँसता रोता गाता,
तू मिट्टी है या मिट्टी की क्रीड़ा करने वाला—
जब तक यह जानू, मिट्टी ने मुझको लिया पुकार
इसीलिए तो मैं धरती पर अम्बर रहा उतार !

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार,
तू ही मिला न मुझे वहाँ मिल गया खड़ा संसार

चिन्तन आया था मेरे ढिग तुझको मुझे दिखाने
लेकिन जितने रूप दिखे सब थे अनबूझ-अजाने,
लिया भोग ने जोग पता देने को मुझको तेरा
किन्तु स्वयं ही भूल गया वह अपने ठौर ठिकाने,
छिपा कहाँ तू जब तक खोजूँ मैं इस बड़े नगर में
तब तक मेरे कान पड़ गया जग का हाहाकार !
और तभी से लगा बाँटने मैं दुनिया में प्यार !
कोई आये कोई जाये है सबका सत्कार !

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खड़ा संसार !

३६

आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !

डालकर जादू मधुर कोई नयन का
छीनकर सब ले गया उल्लास मन का,
वेदना का है घिरा ऐसा घना तम
बुझ गया पहले समय से दीप दिन का,
याद की ऐसी लहर पर बह रहा हूँ
कूल का भी आज आकर्षण नहीं है !
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

खो गये सुधि-स्वर किसी के गीत-वन में
जा छिपे लोचन किसी के रूप-घन में
खोजता फिरता बसेरा पन्थ भूला
कल्पना-पंछी किसी के नभ-नयन में
आज अपनी ही पकड़ से मैं परे हूँ
आज अपने पास अपनापन नहीं है !
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

मृत्यु-जैसी मूकता की ओढ़ चादर
रात की सारी उदासी प्राण में भर
आँज आँखों में तिमिर की कालिमा सब
देखता लेटा पड़ा मैं शून्य अम्बर
नाचते हैं पुतलियों पर अश्रु प्रतिपल
किन्तु पलकों में पुलक कम्पन नहीं है
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

तीव्र इतनी प्यास प्राणों में जगी है

हर सितारे की नज़र मुझ पर लगी है,
प्राण-नभ के चाँद की पर चाँदनी सब
दूर निद्रा के नगर में जा ठगी है,
चेतना जड़ हो गई है आज ऐसी
प्राण है, पर प्राण में धड़कन नहीं है !
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

ओ गगन के चाँद ! तू क्यों मुस्कराता,
रास किरणों का धरा पर क्यों रचाता,
क्या नहीं मालूम तुझको देखकर यूं
है किसी को चाँद कोई याद आता,
मान जा ओ मान जा चंचल हठीले
आज मेरी आग पर बन्धन नहीं है !
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

देख मन करता विरह का यह अँधेरा,
हो कभी जग में न इस निशि का सबेरा,
बस पड़ा यूं ही रहूँ मैं अन्त दिन तक
बन्द हो यह निठुर सुधियों का न फेरा,
क्या करूँ पर मैं विवश, निष्ठुर समय का
आज मेरे हाथ में दामन नहीं है !
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

कल सुबह होगी जगेगा विश्व-उपवन,
कोक-कोकी का मिलन होगा मगन-मन,
खोल सीपी से नयन तुम भी उठोगे
सृष्टि को देकर नया जीवन, नये क्षण,
पर तुम्हें मालूम क्या मेरी निशा को
मृत्यु से कम प्रात का दर्शन नहीं है !
आज मेरे कंठ में गायन नहीं है !!

३७

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनियाँ में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

हाथों को जो दिया खिलौना ऊषा ने
वह दिन की खींचा-तानी में टूट गया,
माथे पर जो मोती जड़ा सितारों ने
वह पतझरवाली गलियों में छूट गया,
आँगन चीखा, सेज-अटारी पछताई,
दृग भर लाई ढोलक, सिसकी शहनाई
कोई श्याम हठी सूने बृन्दाबन में
मोहन बन आया, पाहन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनियाँ में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

मैंने रचा घिरोंदा जो सागर-तीरे
उसे बहा ले गई समय की एक लहर,
निसी नयन की नदिया में जा डूब गया
फूंका जो स्वर मैंने श्वास-बाँसुरी पर,
जिसे किया था प्यार फ़ूल वह शूल हुआ,
जिसे किया था याद ज्ञान वह भूल हुआ,
मेरा हर अनमोल रतन इस मेले में
कंचन बन आया, रजकरण बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनियाँ में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

डाल गया था फूल मिलन जो अंचल में
उन्हें चुरा ले गई साँझ सूनी कोई,
विरह लिख गया था जो गीता अधरों पर
उसे याद कर बदली एक बहुत रोई,
कुछ दिन हँसने की तय्यारी में बीता,
कुछ दिन रोने की लाचारी में बीता,
मन की रजनी का प्रभात तन के द्वारे
नन्दन बन आया, सावन बन चला गया ।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनियाँ में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया ।

जो भी दीप जला संध्या के आँगन में
नहीं सुबह से उठकर नजरें मिला सका,
जो भी फ़ूल खिला उपवन की डाली पर
नहीं साँझ को भूला हँसकर भुला सका,
मुझे न कोई नज़र यहाँ ऐसा आता
सुबह-शाम से आगे जो बढ़कर गाता,
जिसने भी छेड़ा सितार यह साँसों का
गुँजन बन आया, क्रन्दन बन चला गया ।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनियां में
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया ।

उस दिन पथ पर मिला एक सूना मन्दिर
सोये थे कुछ स्वर जिसकी दीवारों में,
आँगन में बिखरा था कुछ चन्दन-कुंकुम
अक्षत कुछ अटके थे देहरी-द्वारों में

मैंने पूछा तेरा कहाँ पुजारी है ?
वह जब तक कुछ कहे कि क्या लाचारी है ?
तब तक आँसू एक ढुलक मेरे दृग में
अर्चन बन आया, दर्शन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनियाँ में
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

३८

खड़ी सजी बारात गा रहीं सखियाँ मगलचार
प्रीति-पालकी लिये द्वार पर बैठे हुए कहार,
दुल्हनियाँ जाने को लाचार।

लाल रंग की बनी चुनरिया, पीत रंग की चोली
मुतियनवाली झालर-झूमर, चन्दनवाली डोली,
कानों दमके तारा-कुँडल, माथे चन्दा-बेंदी
संध्या आँजे काजल, उषा रचे महावर-रोली
पायल ठिठके, घूँघट झिझके, सिसके हिया-पपीहा
किन्तु ठहरना कहाँ हुआ जब परदेसी से प्यार !
दुल्हनियाँ जाने को लाचार !

देस हुआ परदेस, बिराने बने पुराने साथी,
चली सजन के गाँव सुहागिन सबकी याद भुलाती,
आँगन हेरे, उपवन घेरे, टेरे देहरी द्वारा,
भर भर आती आँख, पालकी लेकिन उठती जाती,
कैसा यह मन का गठबन्धन, कैसी प्रेम-डगरिया
पहले अपना गेह छुटे फिर मिले पिया का द्वार !
दुल्हनियाँ जाने को लाचार !

देख विदा की बेला है यह काजल छलक न आये,
तेरी उजली उजली चादर दाग नहीं लग पाये,
है चल रही बयार और खा रही झकोले डोला,
घूँघट गोरी थाम न बाहर चाँद कहीं दिख जाये,
बड़ा निठुर क्वाँरापन जग में, बड़ी निठुर यह पूजा
और निठुर इनसे भी ज़्यादा है निष्ठुर संसार !
दुल्हनियाँ जाने को लाचार !

शरम न कर री, यहाँ न कोई गली रही क्वाँरी है,
आज अगर तेरी तो कल हम सबकी ही बारी है,
आगे-पीछे का अन्तर बस, भाँवर सबकी पड़ती,
हर घर नैहर से पी-घर जाने की तैयारी है,
मुड़-मुड़कर मत देख खड़ा जो बचपन लिये खिलौने
जानेवाले नहीं देखते पीछे की जलधार !
दुल्हनियाँ जाने को लाचार !!

राजकुमारी जा ! तेरे घर रोज बजे शहनाई,
सूरज तेरी गोदी खेले, चन्दा करे ढिठाई,
किरनें तेरी सेज सँवारें, कलियाँ कुन्तल गूँथे,
आँगन लीपे धूप, चाँदनी पानी भरे लजाई,
भूले-भटके कभी हमारी सुधि यदि आ जाय तो
गा लेना यह गीत, गगन जब गाये मेघ-मल्हार !
दुल्हनियाँ जाने को लाचार !

इस द्वार जाऊँ

३९

इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर ।।

अनजान यह नगर है, अनजान यह डगर है,
न चढ़ाव का पता है, न ढलाव की खबर है,
सब कह रहे मुसाफ़िर, चलना सम्भल-सम्भल कर
लम्बा बहुत सफर है, छोटी बहुत उमर है ।
पर क्यों डरूँ डराऊँ, पथ खुद न क्यों बनाऊँ,
मैं चढ़ गया हिमालय, गिर-गिर फिसल-फिसल कर ।

इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ ।
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर ।।

बेदाग़ सूत वाले, सौ दाग़ सूत वाले,
इस हाट कुछ दुशाले, उस हाट कुछ दुशाले,
कुछ कह रहे इसे ले, कुछ कह रहे उसे ले,
इस से बदन छिपाले, उसका कफ़न बना ले ।
मैं क्यों इसे कढ़ाऊँ, मैं क्यों उसे धुलाऊँ,
परदा उठा चुका हूँ, चादर बदल-बदल कर ।

इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल बदल कर ।।

इस छोर एक सरिता, उस छोर एक संगम,
पानी कहीं बहुत है, पानी कहीं बहुत कम,
हर बूंद का इशारा, हर लहर का निमन्त्रण,
तट का सुनूँ तराना, मझधार का कि सरगम,
पर क्यों न डूब जाऊँ, पर क्यों न तैर आऊँ,
कश्ती डूबा चुका हूँ, लंगर बदल-बदल कर।
इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।।

इस ओर एक मेला, उस ओर एक मेला,
यह पन्थ भी झमेला, वह पन्थ भी झमेला,
हर आँख हेरती है, हर बाँह घेरती है,
कैसे करूँ अदेखा, कैसे रहूँ अकेला,
पर क्यों नज़र चुराऊँ, क्यों भीड़ में न जाऊँ,
होली मना चुका हूँ, मैं सर बदल-बदल कर।
इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ।
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।।

इस गाँव एक काशी, उस गाँव एक काबा,
इसका इधर बुलावा, उसका उधर बुलावा,
इससे भी प्यार मुझ को, उससे भी प्यार मुझको,
किस को गले लगाऊँ, किस से करूँ दिखावा।
पर जात क्यों बनाऊँ, दीवार क्यों उठाऊँ,
हर घाट जल पिया है, गागर बदल-बदल कर।
इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ।
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।।

सात मुक्तक

४०

रात इधर ढलती तो दिन उधर निकलता है,
कोई यहाँ रुकता तो कोई वहाँ चलता है
दीप औ' पतंगे में फ़र्क सिर्फ इतना है—
एक जलके बुझता है, एक बुझके जलता है !

उनको बदलने के लिए हमको बदलना ही पड़ा,
चाँद बनने के लिए सूर्य को ढलना ही पड़ा ;
नभ के सितारे न करें व्यंग्य कहीं धरती पर
इसलिए रात में हर दीप को जलना ही पड़ा !

चाँद को द्वार से यों ही न पलट जाने दो,
बादलों का ज़रा घूंघट यह उलट जाने दो ;
उम्र तो सारी पड़ी है अभी रोने के लिए
आज की रात तो हँसते हुए कट जाने दो !

डबडबाया है जो आँसू यह मेरी आँखों में,
इसको तेरे किसी अहसान की दरकार नहीं ;
जो इबादत भी करे और शिकायत भी करे
प्यार का है वह बहाना तो मगर प्यार नहीं !

पत्थरों के ओ पुजारी, न मुझे और भुला,
दायरा और तेरा द्वार भी हर देख लिया !
तू तो इंसान में इंसान भी न देख सका
मैंने इंसान में भगवान मगर देख लिया ;

तुम जो निरुद्देश्य लिखे जाते हो
लिखना यह बेटिकिट सफ़र है दोस्त !
रास्ते में ही कहीं 'चैक' न तुम हो जाओ—
सिर्फ यही, सिर्फ यही, सिर्फ यही डर है दोस्त !

बुझ चुकीं सिगरिटें, गुल बाकी है
अधजली तीलियाँ पड़ीं आगे,
ऐश-ट्रे में धुआँ कुछ घूम रहा,
आज सब सोये फ़क़त हम जागे !

४१

गहरे, बहुत गहरे एक मोती है—
साँस के धागे में आयु जिसे रात-दिन पिरोती है !
डूबता हूँ बार-बार गोता लगाता हूँ
लहरों से लड़ता हूँ, तट से टकराता हूँ
बूँद-बूँद चुनकर खुद बूँद हुआ जाता हूँ
अंजलि, पर अन्त समय खाली ही पाता हूँ !
गहरे, बहुत गहरे एक मोती है—
तट पर हर एक तरी जिसके लिए रोती है !
गहरे, बहुत गहरे एक मोती है !!
जाल सौ फेंके पर हाथ लगी उलझन ही,
छाने सब सागर पर मिली सिर्फ सिसकन ही,
पुतली पथराईं, दृग बादल बन आए, पर
रात हर एक रही निर्जन की निर्जन ही !
दूर, कहीं दूर एक मोती है—
हर राह जिसके लिए चल-चलकर थकती है सोती है !
दूर, कहीं दूर एक मोती है !!
बचपन से पूँछा वह मचल पड़ा,
और ले खिलौना कहीं खो गया,
यौवन से माँगा तो दर्पण दिखाकर
पथ-बीच कहीं सो गया;
जिससे भी चर्चा की जाना वह अनजाना हो गया,
जनम नयन आँजआँज हँस गया
मरण सेज बिछा बिछा रो गया !

एक अनमोल कहीं मोती है—
इर्द-गिर्द जिसके यह सुबह-शाम होती है !
एक अनमोल कहीं मोती है !!
मन्दिर के द्वार गया दृश्य मिला, दरस नहीं
ग्रन्थ गुने रहस दिखा, परस नहीं,
ज्ञान-ध्यान, पूजन-व्रत-वन्दन सब व्यर्थ गए
एक पल शान्ति नहीं, एक निमिष हर्ष नहीं !
अनबींधा एक कहीं मोती है—
माँग भरने को जिसे सृष्टि भाल धोती है !
अनबींधा एक कहीं मोती है !!
मिला नहीं रत्न और माला अधूरी है,
आयु चुक गई है पर अर्चना न पूरी है,
किस तरह आऊँ पास, कैसे रिझाऊँ तुझे
मेरे तेरे बीच एक मोती की दूरी है !
तूही बता कहाँ वह मोती है—
जिसे बिना पाए भेंट तुझसे न होती है !
कहाँ वह मोती है ?
कैसा अज्ञानी मैं अब तक यह जाना नहीं ?
सामने मनुष्य जो खड़ा है पहचाना नहीं ;
आँख में जो आँसू है, उसको अनुमाना नहीं ;
सागर ही खोजा किया भू को सम्माना नहीं !
दूर नहीं, पास बहुत मोती है—
सामने की चीज मगर दूर बहुत होती है !
पास, बहुत पास एक मोती है !!

अब ज़माने को ख़बर कर दो कि 'नीरज' गा रहा है।

जो झुका है वह उठे अब सर उठाये,
जो रुका है वह चले नभ चूम आये,
जो लुटा है वह नये सपने सजाये,
जुल्म-शोषण को खुली देकर चुनौती,
प्यार अब तलवार को बहला रहा है।
अब ज़माने को ख़बर कर दो…

हर छलकती आँख को वीणा थमादो,
हर सिसकती साँस को कोयल बनादो,
हर लुटे सिंगार को पायल पिन्हादो,
चाँदनी के कण्ठ में डाले भुजायें,
गीत फिर मधुमास लाने जा रहा है,
अब ज़माने को ख़बर कर दो…

जा कहो तम से करे वापिस सितारे,
माँग लो बढ़कर धूएँ से सब अँगारे,
बिजिलियों से बोलदो घूँघट उघारे,
पहिन लपटों का मुकट काली धरा पर,
सूर्य बनकर आज श्रम मुस्का रहा है,
अब ज़माने को ख़बर कर दो,…

शोषणों की हाट से लाशें हटाओ,
मरघटों को खेत की खुशबू सुँघाओ,
पतझरों में फूल के घुंघरू बजाओ,
हर कलम की नोक पर मैं देखता हूं
स्वर्ग का नक्शा उतरता आ रहा है।
अब ज़माने को ख़बर कर दो...

इस तरह फिर मौत की होगी न शादी,
इस तरह फिर खून बेचेगी न चाँदी,
इस तरह फिर नीड़ निगलेगी न आँधी,
शान्ति का झण्डा लिये कर में हिमालय
रास्ता संसार को दिखला रहा है।
अब ज़माने को ख़बर कर दो कि 'नीरज' गा रहा है।

गीत

४३

बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ।

उल्काओं के रथ पर सवार हो गई हवा
डस लिया तिमिर-अजगर ने तारों का राजा,
ज्वालामुखियों का ताज पहिन हँस रही धूल
है बजा रहा तूफ़ान समुन्दर का बाजा,

डगमगा रहे पर्वत-पठार लगता मुझको
नाराज़ धरा को नाश मनानेवाला है ।
बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ।।

जुड़ रही हलों की भीड़ गली-चौराहों पर
खिल रहे नग्न डालों में फूल अँगारों के,
हँसियों में चमक हथौड़ों में आगई जान
गा रही कुओं पर गगरी गीत मल्हारों के,

आंधी का झूला डाल जवानी झूल रही
शायद यौवन सावन बन जानेवाला है ।
बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है ।।

ग्रा रहा पसीना ठण्डे शांत हिमालय को
कोरिया, मलाया, चीन सभी में हलचल है,
है उगा रही इन्सान एशिया की ज़मीन,
नैपाल, स्याम, बर्मा की भौंहों में बल है,

श्रम ने उँगली पर उठा लिया पूंजी-पहाड़,
फिर से युग कोई रास रचानेवाला है।
बिजली की पायल पहिने दिशा ठुमुकती है
शायद नभ बादल-राग सुनानेवाला है॥

४४

गर कलम न छीनी गई तो हिन्दुस्तान बदलकर छोड़ूँगा !
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूँगा !!

मैं देख रहा हूँ भूख उग रही है गलियों बाज़ारों में,
मैं देख रहा हूँ ढूँढ़ रही बेकारी कफ़न मज़ारों में,
मैं देख रहा हूँ कला बन गई है तिजोरियों की चाबी,
मैं देख रहा इतिहास क़ैद है चाँदी की दीवारों में,
मैं देख रहा हूँ दूध उगलने वाली धरती प्यासी है,
मैं देख रहा हर दरवाज़े पर छाई मौत उदासी है,
मैं देख रहा मुट्ठी भर दाने पर बिकता सिन्दूर खड़ा
मैं देख रहा हर सुबह सूर्य के ही घर में संन्यासी है
खुद मिट जाऊँगा या यह सब सामान बदलकर छोड़ूँगा !
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूँगा !!

मैं अंगारे ही गाऊँगा जब तक दिनमान न निकलेगा,
आँधी खुद ही बन जाऊँगा जब तक तूफ़ान न निकलेगा,
मैं यूँही अपने शीश रहूँगा पहने ताज कफ़नवाला
जब तक मेरे शव पर चढ़कर मेरा बलिदान न निकलेगा
मेरा है प्रण जब तक यह काली निशा नहीं उजियाली हो
तब तक रोशनी सकल जग की मेरे लोहू की लाली हो,
मेरा है क़ौल कि आता है जब तक न यहाँ मधुमास नया
तब तक मेरी ही क़लम मुरझती बगियाँ की हरियाली हो
मैं स्वर का नया शहीद साज़ हर गान बदलकर छोड़ूँगा !
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूँगा !!

मुझको फाँसी का फन्दा दिखलाकर तुम मोड़ नहीं सकते,
मुझ पर तलवारें अज़माकर मुझको तुम तोड़ नहीं सकते,
बेड़ी-हथकड़ियों से मेरी मिट्टी ही बस बँध सकती है,
मेरे विद्रोही गानों पर तुम गाँठें जोड़ नहीं सकते,
मैं उस माँ का बेटा हूँ जिसकी गोद लहू से लथपथ है,
मैं उस बहार का फूल कि जिसका पतझारों का ही पथ है,
मैं उस चिराग़ की ज्योति जला जो जीवन भर तूफ़ानों में
मैं उसका सेज-सुहाग मरण-आलिंगन ही जिसका व्रत है
मैं नवयुग-निर्माता हूँ रूढ़ि-विधान बदलकर छोड़ूँगा !
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूँगा !!

मैं उन्हें चाँद दूँगा जिनके घर नहीं सितारे जाते हैं,
मैं उन्हें हँसी दूँगा जिनके घर फूल नहीं हँस पाते हैं,
मैं उनका तीरथ हूँ जिनके पैरों की मिट्टी काशी है
उनका सावन हूँ जो रेगिस्तानों से हाथ मिलाते हैं,
वे सभी उजाले में आयें जो अँधियारे में खोये हैं,
वे सभी देश गौरव हों जो निज श्रम से दीप सँजोये हैं,
तुमसे कोई दुश्मनी नहीं बस इतना कहना है मेरा
वे सभी हँसें जो रोये हैं, वे सभी जगें जो सोये हैं,
र यह न हुआ तो निश्चय तीर-कमान बदलकर छोड़ूँगा !
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूँगा !!

अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

४५

(१)

शीश पर घिरे घुमड़ते काल-
प्रलय के बादल-दल विकराल,
विधुर काजल-सी काली रात,
न कोई साथी - संगी साथ,
कठिन पथ - ध्येय, पंथ अज्ञात,
दूर मंज़िल, अति दूर प्रभात,
धरा तमग्रस्त, गगन तमग्रस्त,
दिशा तमग्रस्त, नयन तमग्रस्त,
पन्थ तमग्रस्त, चरण तमग्रस्त,
देह तमग्रस्त, वदन तमग्रस्त,
श्वास की मुक्त पवन तमग्रस्त,
गीत की अरुण किरण तमग्रस्त,
कल्पना कलित अतन तमग्रस्त,
सृष्टि-कण-कण तृण-तृण तमग्रस्त,
चतुर्दिशि अजगर-श्वास समान,
फुफुक फुफुकार रहे तूफ़ान,
तड़कते तड़-तड़ अजड़ पहाड़,
चड़ड़-चड़ पेड़ रहे चिंघाड़,
धड़कते भूमि-खण्ड वन - खण्ड,
दरकते दुर्ग अटूट अखण्ड,

रोकते राह पहाड़ - पठार,
झाड़ - झंखाड़, उजाड़ कछार,
न नभ में ज्योति, न जग में ज्योति,
न कर में ज्योति, न मग में ज्योति,

विघूर्णित उदधि पर्वताकार,
तोड़ता सृष्टि - सदन के द्वार,
काँपते स्वर्ग - नरक के छोर,
किन्तु वह कौन लक्ष्य की ओर—

बढ़ रहा जो निज सीना तान,
चीर तम ज्योतित बान समान ?
अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

(२)

सामने मन - मन्दिर वीरान,
धधकता मरघट - सा सुनसान,
देवता का शव कफ़न - विहीन,
धूल में पड़ा, धूल - सा दीन,

हृदय की चिर-संचित अभिलाष,
बुझे जीवन की अन्तिम आस,
चिता - सी धधक विदग्ध अधीर,
जल रही उर-यमुना के तीर,

चपल अनगिन तुतले अरमान,
फैल सब ओर अँगार - समान,
धधक धधकाते मरघट - ज्वाल,
जला सुधि - साँसों के कंकाल,

स्वप्न के अनगिन छाया-प्रेत,
मौन कर-कर प्यासे संकेत,
हृदय में उपजाते भय-भ्रान्ति,
अनन्त अशान्ति, अनन्त अशान्ति,

चीखता अन्ध - उलूक - अतीत,
निशा भयभीत, 'दिशा भयभीत,
न वह कोकिल कलकण्ठ-पुकार,
न वह अब मधुकर की गुञ्जार,

न वह अब पायल की झंकार,
कहाँ वे स्वर मधुमय सुकुमार ?
पेड़ सब बनकर माटी - धूल
फूल बुलबुल के बने बबूल,

प्राण में हर - हर हाहाकार,
श्वास में रुद्ध चीख - चीत्कार,
नयन में थिरक रही जलधार,
देह का रोम - रोम अंगार

उठ रहा मस्तक में तूफ़ान,
न तन का ध्यान, न मन का ध्यान,
अधर पर ले फिर भी मुस्कान,
गा रहा जो नवयुग के गान—
अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

(३)

उगलता अंगारे आकाश,
जल रहे दिशि-दिशि, गृह-आवास,
पवन मारता अग्नि के बाण,
धरा म्रियमाण, सृष्टि म्रियमाण,

पड़ जलते, पथ रहे कराह,
सिसकते वन, भू भरती आह,
चीखती चील ताप से त्रस्त,
सकल कण-कण तृण ऊष्माग्रस्त;

शपित-तापित हो छिन्न-मलीन,
स्वयं छाया भी कुँचित - पीन,
मौन तरु, मौन नगर-वन-ग्राम,
बनी दोपहर मरण की शाम,

मौन पनघट - तट - नौकाधार,
मौन मधुवन मधुकर - गुँजार,
चल रहा अग्निल झंझावात,
दग्ध सब लता - बेलि - तरु-पात,

किन्तु वह कौन-कौन अधनग्न ?
देह - तन भग्न, प्राण-मन भग्न,
भाल में चिन्ताओं की भीड़,
हृदय में लाचारी की मीड़,

नसों में शोषित सूखा रक्त,
खींचने में भी खाल अशक्त,
सफेदी में केशों की श्रान्त,
झाँकती छाया - मृत्यु अशान्त;

बुझ रही दीपक - लौ - सी दीठ,
पीठ में पेट, पेट में पीठ,
पीत पतझड़ - सा कंपित गात,
पदों में साँझ, नयन में रात।

किन्तु फिर भी जो ले हल - बैल,
भूमि पर स्वयं बीज - सा फैल,
सींच श्रम से बंजर - वीरान,
खाद - तन की दे पुलकित प्राण,

जोत कर जौ - जौ तिल - तिल भूमि,
धूल - माटी अधरों से चूम,
"प्राणमय अन्न अन्नमय प्राण,"
सूत्र का तन धर मूर्तितमान,

स्वयं भूखा रह कर दिन - रात,
स्वयं प्यासा रह कर दिन - रात,
कर रहा भूखे जग को दान,
कर रहा प्यासे जग को दान,

अन्न का दान, प्राण का दान,
नीर का दान, वस्त्र का दान—
अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

४६

घर - घर पर आवाज़ लगाते मिट्टी ले लो मोल,
गाँव-गाँव इस धुन्ध-धूप में भूखे-प्यासे डोल,
चिकनी, खुदरी, गीली, सूखी, काली, पीली, श्याम,
लाद गधों पर तरह-तरह की मिट्टी यह बेनाम,

खोज रहे तुम किस सौदागर को ओ मिट्टीवाले !
कौन यहाँ जो इस अनमोल वस्तु का मोल चुका ले !
अरे कहा क्या—बस दो पैसे एक गधे का दाम,
कुछ कम भी हो सकता है यदि ले लूँ माल तमाम,

यह कैसा व्यापार, अरे यह कैसा है उपहास !
दो पैसों में बेच रहे तुम मिट्टी का इतिहास !
यह कैसी मजबूरी भाई यह कैसी लाचारी !
मिट्टी की सम्पत्ति बिक रही कुछ पैसों में सारी ।

आसपास ही देख रहा हूँ मिट्टी का व्यापार,
चुटकी भर मिट्टी की कीमत जहाँ करोड़ हज़ार,
और सोचता हूँ आगे तो होता हूँ हैरान,
बिका हुआ है कुछ मिट्टी के ही हाथों इन्सान,

ये एटम, ये टैंक-गनें, ये गैस-मशीनें, यान,
कुछ मिट्टी के लिए कर रहे मिट्टी का बलिदान,
और बाँटने को मिट्टी से बस मिट्टी का प्यार,
खड़ी बीच में है मिट्टी के लोहू की दीवार,

यह चाँदी की चहल-पहल, यह मय-मीना का शोर,
यह पेरिस की रात, कोरिया की यह काली भोर,
यह चितवन की चकाचौंध, यह चुम्बन के बाज़ार,
ताम्रकाल वह, लौहकाल यह, सोने का संसार,

ये भिखमंगे, ये नंगे, ये तुन्द महाजन सेठ,
यह अमरीका, यह ब्रिटेन, यह डालर रोटी-पेट,
मन्दिर, मस्जिद, गिरजेघर, ये भक्त और भगवान,
बस कुछ मिट्टी लिये लगाये सब अपनी दूकान।

कलाकार, पैगम्बर, नीतिक, बुद्ध सिकन्दर सारे,
सभी ज़िन्दगी में मुट्ठीभर मिट्टी से बस हारे।
और उसी मिट्टी को तुम यों लुटा रहे बेमोल
चीख़ उठेगी क़ब्र किसी की अरे सँभलकर बोल।

अरे सँभलकर बोल, अभी सोयी है थककर लाश,
झरे फूल के पास खड़ा है बुलबुल का उच्छ्वास !
कैसा है वह कुम्भकार, यह कैसा क्रूर विचार,
दर-दर मारी फिरे गधों पर मिट्टी यह सुकुमार !
यह अचरज की बात नहीं, यह कोई बात अजानी,
'मिट्टी को अच्छी लगती है मिट्टी की कुर्बानी।'

अहं की कारा

४७

मेरे ताले की कुँजी कहीं खो गई है,
और ज़िंदगी एक छोटे से कमरे में बन्द हो गई है।
वैसे यहाँ कोई मुझे कष्ट नहीं,
सभी आराम है,
रेशमी रज़ाई है,
गुदगुदा बिस्तर है,
साफ़-सुथरा फ़र्श है,
लिपी-पुती पक्की दीवारें हैं (चोरों का डर नहीं),
खिड़कियाँ हैं,
रोशनदान हैं,
हवा भी आती है,
कभी-कभी बाहर की धूप झाँक जाती है,
लेकिन एक बात है :
और वह यह कि मेरी बहुत बड़ी दुनिया अब बहुत छोटी होगई है,
क्योंकि मेरे ताले की कुँजी कहीं खो गई है।
दुनिया वह—
जहाँ भौंरे गाते हैं,
पत्ते गुनगुनाते हैं,
फ़ूल मुसकराते हैं,
सुबह-शाम सूरज-चाँद आरती सजाते हैं,

दुनिया वह--
जहाँ हवा पेड़ों पर झूला झूल जाती है,
बादल की आँख नदी बनकर डबडबाती है,
केसर की क्यारी झूम तालियाँ बजाती है,

दुनिया वह--
जहाँ अन्नदाता के बैल हैं,
हल हैं,
खुरपी है कुदाली है,
श्रम की दीवाली है।

दुनिया वह--
जहाँ ढीठ कोयल की कूक है,
पपीहे की हूक है,
सब के दिलों में एक प्यार की भूख है,
कजली की कसक जहाँ जगती है,
बिरहा की बहक जहाँ लगती है,
साँसों के सरगम में बाँसुरी-सी बजती है।

दुनिया वह
जहाँ हवा पानी की गुनगुन है,
कलियों की कुनमुन है,
माटी की रुनझुन है,
बगिया के राधा कन्हाई की अनबन है।

दुनिया वह
जहाँ भीड़ मेला है,
मोटर बसों का सैलाब जैसा रेला है,
बम बंदूकों की चर्चा है,
ख़बरों अख़बारों की बरखा है,

डलेस की युद्ध-नीति नेहरू, की शांति-नीति, गांधी का चरखा है,
यह सारी दुनिया, जो सचमुच ही दुनिया है,
आज मेरे लिए सिर्फ, मेरे दरवाजे ही कफ़न ओढ़ सो गई है।
क्योंकि मेरे ताले की कुँजी कहीं खो गई है।
किसको बुलाऊँ मैं ?
भीतर से बंद हूँ बाहर से ताला यह कैसे खुलवाऊँ मैं ?
अपने हाथ गढ़ी हुई कारा यह कैसे जलाऊँ मैं ?
तो फिर क्या ऐसे ही बंद मुझे रहना है ?
अपना अकेलापन पड़े पड़े सहना है,
अधजली सिगरेट-सा इसी तरह दहना है ?
नहीं, नहीं,...यह सब असम्भव है,
बाहर जो हलचल है उसके लिए सभी छकु सम्भव है
सूरज निकलने की देर है,
अबेर है,
नहीं अंधेर है,
भीड़ जब आएगी,
कुँडी खटखटाएगी,
द्वार बंद पाएगी तो रोष में आएगी,
तब यह प्राचीर एक छिन में टूट जाएगी।
फिर एक ताला नहीं,
लाख लाख ताले खुल जाएँगे,
तन मन के किवाड़ जिनमें कालिख लगी है खुद बखुद धुल जाएँगे,
जनम जनम के छुटे मीत मिल जाएँगे,
और यह कमरा तब आँगन बन जाएगा,
होगी दीवार न तो आँगन यह त्रिभुवन बन जाएगा।
फिर न किसी ताले या कुँजी की खोज होगी,
होली दीवाली रोज़ रोज़ होगी।
यानी पूर्णमासी यह दौज होगी।

तब न कोई छोटा और बड़ा होगा,
तब न कोई बैठा औरख ड़ा होगा,
दीपक की बाँहों में सूरज जड़ा होगा।
आज मगर ताले की कुँजी कहीं खो गई है
इसीलिए सपनों की रात मेरा आँचल भिगो गई है,
और चार ईंटों में साँस दफ़न हो गई है,
क्योंकि मेरे ताले की कुँजी कहीं खो गई है।

४८

(१)

दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ !
होते हैं कवि, वे नहीं गाते हैं,
दुखी-दलित जनता के पास नहीं जाते हैं,
जाते भी हैं, तो शरमाते हैं,
अपने ही एक बन्द कमरे में
साधना करते हैं,
लिखते हैं,
पढ़ते हैं,
मौत आती है मर जाते हैं।
और मैं गाता हूँ, दुनिया को भाता हूँ,
लाख-लाख लोगों की चोटें सहलाता हूँ,
घावों पर मरहम लगाता हूँ,
गिरे को उठाता हूँ,
झरे को खिलाता हूँ,
बेबस निगाहों पर,
एक जादूभरी मोहिनी-सी डाल आता हूँ।
और मेरा द्वार कभी बन्द नहीं होता है,
कुंडी लगाकर वह कभी नहीं सोता है,
जो भी पास आए
ग़रीब या अमीर,
राजा या फ़कीर,
वह सबसे गले मिलता है,
हर एक बाँह में गुलाब-जैसा खिलता है।

क्योंकि पास मेरे जो कुछ है,
मेरा नहीं, वह संसार का है,
मेरा हर गीत, हर अश्रु
मेरा तन,
मेरा मन,
मेरा धन,
मेरा सारा-का-सारा अस्तित्व ही उधार का है,
दो-चार का नहीं, हज़ार का है।
दूसरे की चीज़ है जो
उसे बन्द रखने को पाप मैं समझता हूँ,
कल जिसे देना पड़ेगा ही आज उसे
खुशी-खुशी देने में मैं नहीं हिचकता हूँ,
अक्लमन्दी का एक सबूत पेश करता हूँ।
दोस्त तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ !

(२)

दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ !
कवि के लिए तो कला सिर्फ कला होती है,
और मेरे लिए कला धूप है।
धूप—जो सोए संसार को जगाती है,
हँसने पर जिसके
न कोई आँख, आस्तीन गीली रह पाती है,
सबके घरों से अँधेरी भाग जाती है,
नई सुबह आती है।
और जिसकी छाया में
शैशव किलकता है,

यौवन उछलकर पहाड़ों पर चढ़ता है,
फूल मुस्कराते हैं,
खेत-खलिहान गुनगुनाते हैं,
नदियाँ लहरती हैं,
गेहूँ की बालियाँ सिहरती हैं,
मेले जुड़ा करते हैं,
आँखों में नये-नये स्वप्न उड़ा करते हैं।
घर से निकलकर हम दुनिया में आते हैं,
काम पर जाते हैं,
कलम, हल, कुदाली और तूलिका चलाते हैं,
खेलते हैं, कूदते हैं,
रूठते-मनाते हैं,
प्यार करते हैं, शरमाते हैं
तीज-त्योहार, ब्याह-भाँवर रचाते हैं,
एक से अनेक हो जाते हैं।
दोस्त तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ,
क्योंकि कला मेरे लिए धूप है
और वह तुम्हारे निकट रात है।

(३)

दोस्त तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ।
होते हैं कवि जो—
वे वाद पर विवाद किया करते हैं,
मोटे-मोटे ग्रन्थों को
पढ़ते हैं,
गुनते हैं,

याद किया करते हैं
और फिर नई-नई शैलियाँ ईजाद किया करते हैं।
किन्तु, मैं कोई भी वाद नहीं जानता हूँ,
कोई सिद्धान्त नहीं मानता हूँ,
सिर्फ आदमी को पहचानता हूँ।
उसकी मुट्ठी में जो भविष्य है,
उसको बस पढ़ लेना चाहता हूँ
और उसे छन्दों में जड़ देना चाहता हूँ,
यानी, जहाँ आज संसार है
उससे दो-चार कदम आगे बस बढ़ लेना चाहता हूँ।
शिक्षा भी यह मैंने
कालिज-स्कूलों के बीच नहीं पाई है,
सच पूछो तो, वहाँ उम्र ही गँवाई है।
अनुभव ही मेरा शिक्षालय है,
जीवन ही शिक्षक है,
प्रेम ही पाठ है,
मेरी किताब हर गली, हर हाट है
और मेरा इम्तहान–
आँधियों में दीपक जलाना है,
रातों में सूरज बुलाना है,
सूखे मुरझाए फूल
धूल में जो लेटे हैं,
उनको उठाकर खिलाना है,
घर-घर बहार नई लाना है।
दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ।
होते हैं कवि जो, वे सोते हैं,
और मैं जागता हूँ–
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ।

(४)

दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ ।
होते हैं कवि जो, वे
भारतीय कविता में
लन्दन की झूठी उपमाएँ दिया करते हैं,
पूरब के प्याले में पश्चिम की शेम्पेन भरते हैं,
टेम्स में नहाते हैं, गंगा से डरते हैं,
राधा पर नहीं, यानी जूलियट पर मरते हैं ।
पश्चिम से बैर नहीं मेरा है,
टेम्स के तट का भी प्यारा सबेरा है,
पर, मुझे जाने क्यों पूरब का सूरज लुभाता है,
गंगा में नहाता हूँ तो
वाल्मीक मेरी आत्मा में बैठ जाता है,
व्यास मुझे गोद में उठाता है,
कालिदास माथा सहलाता है
सूर और तुलसी का विश्व-प्रेम
मुझको मनुष्य के समीप बुला लाता है ।
शायद मेरा इनसे पुराना कुछ नाता है ।
क्या करूँ, बिल्कुल मजबूर हूँ
बहुत चाहता हूँ यह न किन्तु टूट पाता है ।
जूलियट की अलकें भी सुन्दर हैं,
वे भी उलझाती हैं,
साँसों से गीत गवा जाती हैं,
डूबता हूँ लेकिन जब राधा के आँसू में
मेरी कविताएँ तब ऋचाएँ बन जाती हैं ।
दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ ।

होते हैं कवि, वे विदेशी बुशशर्ट ही पहनते हैं
और मैं स्वदेशी हूँ
भीतर से बाहर तक स्वदेशी हूँ ।
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ ।

(५)

दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ ।
होते हैं कवि जो इतिहास उन्हें जपता है,
उन पर आलोचनाएँ बिकती हैं,
और उनका चित्र पाठ्य-पुस्तकों में छपता है ।
लेकिन इतिहासों में मेरा कहीं नाम नहीं,
पाठ्य-पुस्तक को भी मुझसे कुछ काम नहीं,
आलोचक मुझे मिलें-ऐसी रंगीन मेरी शाम नहीं
मेरा नाम लिखा है पहाड़ों पर,
नदियों पर, सागर-किनारों पर,
समय के मस्तक पर,
जलते मरुस्थल पर,
जागते सूरज और ऊँघते सितारों पर ।
और मेरे गीत उन होठों के मन्त्र हैं,
नये इन्सान की जो मूरत बना रहे हैं,
स्वर्ग को ज़मीन पर ला रहे हैं,
आँधियों के गले बाँह डाल
बिजलियों को शरमा रहे हैं,
सूरज के बाल सहला रहे हैं,
एक नया जादू दिखा रहे हैं ।
पैसफिक पाँव जिनके धोता है,
इतिहास जिनकी गोद खेल बड़ा होता है,
काव्य जिनकी छाया के साथ खड़ा होता है ।

ग्रौर वर्तमान नहीं,
मुझ पर लिखेगा भविष्य लेख।
वह भविष्य–
जिसकी ग्रालोचना के मानदण्ड
छन्द नहीं, ग्रन्थ नहीं,
ग्राँसू वे होंगे जो–
मानव की ग्राँखों के ग्राँसू जो
रामायरा ग्रौर सूर-सागर के पृष्ठों से
युग-युग पर बरसे थे
ग्रौर जिनकी छाया में
कला, धर्म-संस्कृति के मृत प्रारा सरसे थे।
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ,
क्योंकि उन्हीं ग्राँसुग्रों का गायक हूँ,
बहुत नासमझ हूँ,
तुम्हारे नहीं लायक हूँ।
दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मै कवि नहीं हूँ।
सचमुच मैं कवि नहीं हूँ॥

देश के करोड़ों बेकारों से !

४६

मिली नहीं नौकरी तुम्हें गो सभी जगह कुँडली दिखाई,
    कि पाँव में पड़ गई बिबाई, कि भाग्य को आगई रुलाई।
खड़े-खड़े क्यू में उम्र बीती झुके-झुके दिन का सूर्य डूबा,
    उमीद हर नाउमेदी लाई, हरेक सुबह बनके शाम आई ।।

उदास चेहरे से एक दिन भी न झाँकी कमलों की पाँति कोई,
    उजाड़ आँखों के पास आई न सपनों वाली बरात कोई।
रुँधे गले से कभी न फूटा किसी पिया का प्रणय तराना,
    थके चरण को सदा थकाती रही, थके दिन की बात कोई ।।

बहार तुमसे नज़र चुराकर सदा दूसरी गली से गुज़री,
    हँसी-खुशी रूठ करके तुमसे सदा पराये चमन में उतरी।
तुम्हारे आँगन की धूल छूते ही फूल की झर गई पँखुरियाँ,
    तुम्हारा दरवाज़ा देखते ही सुबह की लौ बन के शाम बिखरी ।।

न तुमने पूनों का चाँद देखा, न जाना हँसता है फूल कैसे,
    न रोशनी ने तुम्हें पुकारा, न चाँदनी ने कहे सँदेसे।
दिये जले सब जगह कि जब हर कुटी, महल, छत, मुँडेर पर तो,
    कि जैसे मरघट में मौत घूमे रही रात धर तुम्हारे ऐसे ।।

हमेशा रोटी की एक चिन्ता ने फाँसी दे दी हर एक सपन को,
    हमेशा कुचली हुई उमीदों ने नोंच डाला हर एक लगन को,
कहाँ ग़रीबों पै इतना पैसा कि चाँदनी को ख़रीद पायें,
    कहाँ है भूखों को इतनी फुरसत कि देखें फूलों सजी दुल्हन को।

भरी जवानी में भी न तुमने कभी सितारों के गीत गाये,
वसन्त ऋतु में भी अपनी राधा को तुम न गजरे ख़रीद पाये।
सुरंग सावन में भी सुहागिन कलाइयों में पड़ी न चूड़ी,
ठिठुरती रातों में भी कहीं से उधार दो कोयले न आये ॥
दशहरे में भी तुम्हारे बच्चे न खेल पाये कभी खिलौने,
न हाय होली के दिन भी सूखे तुम्हारी आँखों के गीले कोने।
दिवाली के दिन भी एक दोना न ला सकी लक्ष्मी घर तुम्हारे,
निराश राखी के दिन भी सिसके सगुन के धागे सजे सलोने ॥
कभी ज़हर खाके सोगये तुम कभी समन्दर में ली समाधी,
कभी पटरियों पै लेट अपने लहू से रंग दी सफेद खादी।
कभी लगाई छलाँग छत से, कभी किसी बन में झूला झूले,
न जाने तुमने हैं कितने खोये जवान नेहरू जवान गांधी ॥
उस रोज़ चुस्की के वास्ते जब सिसक के मुन्नू खुद सोगया था,
तब क्या बताऊँ, तुम्हारे अन्तर के घाव को क्या क्या हो गया था,
उस रोज़ जब बेचने को निकले थे करधनी तुम लुटी बहन की,
तब पानी कितने समुन्दरों का न जाने आँखों में रोगया था ॥
किराया पाये बिन, देके गाली, जब उठ गया था मकान वाला
तुम्हें लगा था कि तेज़ भाले ने जैसे तुमको ही छेद डाला।
पर आह भर बस तुम रह गये थे, न कह सके कुछ न कर सके थे,
क्यूंकि ग़रीबों की सिर्फ इज्ज़त है एक सूखा हुआ निवाला ॥
हाँ, जब दवाई बिना तुम्हारे पिता की मंज़िल तै हो रही थी,
बिना कफ़न जब तुम्हारी माँ की ही लाश आँगन में सो रही थी,
बिना दूध जब तुम्हारे नन्हें से चाँद को लग रहा गहन था,
बिना स्नेह जब तुम्हारे घर की ही रोशनी घर में खो रही थी—
तब घूमते थे उदास सड़कों पै तुम लिये डिगरियों का बस्ता,
तब आँख में सावनों को रोके खड़ा था एक बादलों का दस्ता।
मगर पता था नहीं तुम्हें यह निराला टैगोर के सपूतो !
है आज के इस स्वतन्त्र भारत में आदमी कौड़ियों से सस्ता ॥

हज़ार कोशिश कीं तुमने लेकिन नहीं तुम्हारा ही चान्स आया,
कि तुम सभी में थे योग्य इससे तुम्हें कमेटी ने काट खाया।
वह जो गधों का था एक नायक जो लाद सकता था सिर्फ़ लादी,
क़लम के सौदागरों ने उस से तुम्हारे तुलसी का सर झुकाया ॥

है आज की योग्यता सिफ़ारिश तुम अपनी ये डिगरियाँ जला दो,
इन कालिजों पर अँगार फ़ेंको इन सर्टीफिकटों को जा बहा दो।
न पढ़ने लिखने की है जरूरत न कम्प्टीशन के कुछ हैं मानी,
तुम्हें मिलेगी हरेक सर्विस किसी मिनिस्टर से खत लिखादो ॥

उदास मत हो मगर बहुत दिन न सत्य का यूँ संहार होगा।
न यूँ अनय का गजर बजेगा न न्याय पर यूँ प्रहार होगा,
निराश मत हो, निराशा मुर्दों की ही वसीयत है सिर्फ़ भाई,
जो डगमगाता है आज बेड़ा वह पार होगा––वह पार होगा ॥

मैं गा रहा हूँ कि तुम पहाड़ों को हाथ में गेंद-सा उठालो,
मैं गा रहा हूँ कि तुम सितारों के हाथ से रोशनी छिनालो,
मैं गा रहा हूँ कि ताज तख़्तों की ठोकरों से धजी उड़ादो,
मैं गा रहा हूँ कि अपनी साँसों को बिजलियों का कवच पिन्हादो ॥

मैं गा रहा हूँ कि ज़ुल्म का तुम सभी बराबर हिसाब कर दो,
मैं गा रहा हूँ इस उजड़ी बस्ती को तुम खिलाकर गुलाब कर दो,
मैं गा रहा हूँ कि मारदो तुम तमाचा बढ़ नादिरों के मुँह पर,
मैं गा रहा हूँ कि हर नदी को लहू मिलाकर दुआब कर दो ॥

डरो नहीं तुम उठो घटाओं से झूमकर हर गगन पै छाओ,
करोड़ों तुम हो बढ़ो, हिमालय शिरों से एक दूसरा बनाओ।
वह भूख तुम में है जो कि शेरों के जबड़े हाथों से फाड़ डाले,
उसे हवाओं के साथ महलों की ओर मोड़ो कसम दिलाओ ॥

इन स्याह साँपों के फन कुचल दो इन खूनखोरों के दाँत तोड़ो,
इस गंगा जमुना का रुख बदल दो, इन आँधियों की कलाई मोड़ो।
वे जो खड़े हँस रहे हैं तुम पर, गिरो टूट बिजलियों से उन पर,
ये फूल की पँखुरियाँ जो बिखरी पड़ी हैं इनकी क़तार जोड़ो ॥

उठोगे तुम तो यह सूनी संध्या ही लाल होकर किरन बनेगी,
बढ़ोगे तुम तो हरेक मंज़िल ही खुद तुम्हारा चरण बनेगी ।
मिटोगे तुम तो तुम्हारी धरती का और उज्ज्वल सुहाग होगा,
गिरोगे तुम तो यह धूप यह चाँदनी तुम्हारा कफ़न बनेगी ॥

जहाँ शहीदों का रक्त गिरता वहीं से उगता है हर सबेरा,
जहाँ गलाता है देह दीपक वहाँ न आता है फिर अँधेरा ।
है क्रुद्ध होता जहाँ पसीना वहीं से इतिहास का जनम है,
है गुनगुनाती जहाँ जवानी वहीं सृजन डालता है डेरा ॥

ग़रीबी जो बन के रोज़ ईंधन खुद सर्द चूल्हों में जल रही है,
उदासी जो चक्कियों के पाटों में रोज़ पिस-पिस के पल रही है,
वे हाथ जो पाथते ही कंडे बुढ़ा गये बीस ही बरस में,
वह लाठी जो बेसहारे सड़कों पै डगमगाती-सी चल रही है,

तुम उनके सपनों की हो अजंता तुम उनकी रातों के हो उजाले,
तुम उनकी गोदी के हो कन्हैया तुम उनकी पूजा के हो शिवाले ।
तुम उनके तुलसी तुम उनके पुश्किन तुम उनके गांधी तुम उनके नेहरू,
तुम उनके गिरते हुए घरों में हो एक मौसम बहार वाले ॥

तुम उनकी आँखों को रोशनी दो तुम उनके माथे मुकुट सजाओ,
तुम उनके आँगन में मुसकराओ तुम उनके जीवन में जगमगाओ ।
वे गीत बाँटों कि डबडबाता रहे किसी आँख का न काजल,
गगन को नीचे उतार लाओ धरा को ऊपर उछाल जाओ ॥

स्वर्ग-दूत से*

५०

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

भटकी-भटकी है नज़र, गहरी-गहरी है निशा,
उलझी-उलझी है डगर, धुँधली-धुँधली है दिशा,
तारे ख़ामोश खड़े, द्वारे बेहोश पड़े
सहमी-सहमी है किरन, बहकी-बहकी है उषा,
गीत बदनाम न हो, ज़िन्दगी शाम न हो
बुझते दीपों को ज़रा सूर्य बनालूँ तो चलूँ।

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

बीन बीमार औ' टूटी पड़ी शहनाई है,
रूठी पायल ने न बजने की क़सम खाई है,
सबके सब चुप न कही गूँज, न झंकार कोई
और यह जब कि आज चाँद की सगाई है,
कहीं न नींद यह गंगा की मौत बन जाये
सोई बगिया में ज़रा शोर मचालूँ तो चलूँ !

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

बाद मेरे जो यहाँ और हैं गानेवाले,
स्वर की थपकी से पहाड़ों को सुलानेवाले,
उजाड़ बाग़ों-बियाबान-सूनसानों में
छन्द की गन्ध से फूलों को खिलानेवाले,
उनके पाँवों के फफोले न कहीं फूट पड़ें
उनकी राहों के ज़रा शूल हटालूँ तो चलूँ !

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

वे जो सूरज का गरम भाल खड़े चूम रहे,
वे जो तूफ़ान में किश्ती को लिये घूम रहे,
भरे भादों की घुमड़ती हुई बदली की तरह
वे जो चट्टान से टकराते हुए झूम रहे,
नये इतिहास की बाँहों का सहारा देकर,
तख़्ते-ताऊस पर जब उनको बिठालूँ तो चलूँ !

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

यह लजाती हुई कलियों की शराबी चितवन
गीत गाती हुई पायल की यह नटखट रुनझुन
यह कुआँ-ताल, यह पनघट, यह त्रिवेणी, संगम
यह भुवन-भूमि अयोध्या, यह विकल वृन्दाबन,
क्या पता स्वर्ग में फिर इनका दरस हो कि न हो,
धूल धरती की ज़रा सर पै चढ़ालूँ तो चलूँ !

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

कैसे चलदूँ अभी कुछ और यहाँ मौसम है
होनेवाली है सुबह पर न सियाही कम है
भूख-बेकारी-ग़रीबी की घनी छाया में
हर ज़ुबाँ बन्द है, हर एक नज़र पुरनम है,
तन का कुछ ताप घटे, मन का कुछ पाप कटे,
दुखी इंसान के आँसू में नहालूँ तो चलूँ !

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गालूँ तो चलूँ !

---

* इस गीत की प्रेरणा के लिए कवि एक उर्दू कविता का आभारी है।

Life and Death

५१

[Translated from original Hindi]

What is this life ? a wreathe of fancies dear
That weaves the Time to offer at shrine of death,
Each day is petal, flower is each year,
Each knot of the thread is every passing breath.

The colours black and white are night and day,
The shades serene are autumn and the spring,
The tears dripping are dew-drops of pure ray,
And hour that comes and goes is bird on wing.

The fragrance fine are virgin longings sweet,
The dark-eyed dreams are bees humming around,
The handsome hopes are pollens pure and neat,
And nectar is the love of heart profound.

O man then why to weep when life is lost,
Death's nothing but the wreathe-completing knot.

५२

Rise up ! Rise up ! O Love-incarnate-glory of Everest

The time is sick and groans with pain,
Blood stalks the land of flowers,
Earth is raped by bombs and tanks,
And hatred writes the history of man.

Love weeps on the drunken graves,
Truth and Beauty kidnapped in daylight,
Faith is stifled ere it is born,
Peace is hanged on the gallows of swords.
Hunger eats the very flesh of life,
Unemployment employs the suicide,

Morals are preached by immoral lips,
And Justice awaits whips—golden whips
behind silver bars·

The swift current of reason in desert is lost,
A dagger's cut religion has made its goal,
Art, Literature all wander as homeless dogs,
And politics play the game of rogues.

Wake up ! O Wake up ! the Saviour of Truth,
Lest oceans may surge up and swallow the globe,
Rise up ! Rise up ! O Love-incarnate-glory of Everest,
Or passions make the beast of man.

The Trial

५३

At the day's end when commenced proceedings of the Supreme Court, the Chief Prosecutor unfolding the scroll of allegations before the President of the Immortals and pointing towards a man loudly proclaimed :

"That man ! My Lord ! who stands in tattered finery in the forefront row of culprits with head held up high and pale wrinkled face is the chief accused of the day. He has committed, besides many other, such a great crime against the law of this court that none could dare till today.

He was born a poet and was the master of the innumerable vast treasures of the Universe. All the secrets of Nature were open to him. He had everlasting store of stars, dreams, sighs, songs, cadence, refrains, music, art in the hut of his fancy. Yet he sold all his art, all his poetry, all his literature, all his prestige and honour for a few pieces of gold. I, therefore, impeach him in the name of literature of all the ages, I impeach him in the name of poets and poetry of all the races. I impeach him in the name of Nature, in the name of Art, in the name of Beauty, in the name of Love, in the name of this great court of Justice whose faith he has betrayed for nothing and lastly in the name of mankind, in the name of his own sweet name and in the name of his motherland whose graceful mortality he has disgraced by his immortal fame.

For a moment there was lull in the assembly when breaking the silence of the court the judge murmured on his seat—

'Was it so'?

'Yes, Your honour'—slowly said the poet.

'Have you to say anything in defence?' questioned the judge again.

'A word My Lord'—was poet's reply and then moving proudly the poet reached the dock and began :

"Truly My Lold ! I was born a poet and owned the kingdom of this great colourful vast. Sky was my father, earth was my mother, horizon was my home, beauty was my existence, love was my life, poetry was my caste, art was my religion, fancy was my beloved, tears were my songs and songs were my messengers.

Experience was my school, sorrow was my teacher, affliction was my lesson and bereavement my test.

Always night used to swim in the ocean of my eyes like a tear-drop, always dreams played hide-and-seek in my heart, always stars danced on the petals of my eyes and always moon smiled on my silence.

Clouds brought for me the message of some unknown land, oceans surged in me the tides of ineffable pathos, the waves carried for me the sentiments of fathomless abyss, the storms showed me the anger of my God and lightnings the flash of his curved royal sword.

The astounding peaks told me the story of heaven, the tiny currents and fountains sang for me the songs of snowy hills, the South winds whispered in my ears the secret of unexpressed love and the bird on wing and the long aslant stretched shadows of trees filled me with sighs of pain.

I dwelt in heaven, I played with stars, I walked on milky-way but alas my feet rested on the dust, Man was my name, bread was my definition, empty was my belly and born was I in India, the country of fools, where people worship the literature but do not live it.

And yesterday when there was burning heat of hunger in me I begged every subject of my empire to appease it but none could. I searched every corner of my kingdom but in vain. And alas then I turned to the market-place where trade of gold and silver was at its extreme. There I found bread, the portrait of my existence. And I had but to sell myself for a few pieces of gold to purchase it. That's my story and explanation, give your due consideration to it my God of Justice.

The judge listened motionless and when the poet finished he commented.—'You have in every way pleaded not guilty but partly you have been successful and not in full, I therefore, acquit you with this remark. He, whom thou wilt love will hate thee, He, before whom thou wilt kneel will kick thee, He, to whom thou wilt wed your faith, will deceive thee. You will weep, always weep not in tears, but in songs, you will talk not in presence but in silence, you will live when the world has gone'.

The assembly then adjourned sine die and poet moved back saying—Accepted, Accepted, All accepted.

५४

तुम लिखो हर बात चाहे जिस तरह चाहो
काव्य को पर वाद का कंगन न बनने दो।

आयु है जितनी समय की गीत की उतनी उमर है,
चाँदनी जब से हँसी है रागिनी तब से मुखर है;
जिन्दगी गीता स्वयं है जान लें गाना अगर हम
हर सिसकती साँस लय है, हर छलकता अश्रु स्वर है,

गुनगुनाओ गीत तुम हर ताल में, लेकिन
तान को तलवार का चारण न बनने दो।

है वही साहित्य, जो बाँधे न हमको, किन्तु खोले,
हर सुखी के साथ हँस ले, हर दुखी के साथ रो ले;
चाँद का काजल छुड़ा दे, सूर्य को दर्पण दिखा दे,
आदमी से प्यार कर ले अश्रु से आँचल भिगो ले।

तुम उठो, जाओ, मिलो हर भीड़-मेले से
पर मिलन को विरह का कारण न बनने दो।

बदलियों से आँख जिसकी बूँद बनकर झर रही है,
चाँद बनकर जो सितारों से इशारे कर रही है;
व्योम को सिर पर उठाए, भूमि को पग से दबाए—
इस तरफ जो उठ रही है, उस तरफ जो गिर रही है

वह सभी है जिन्दगी, उसको छुओ बढ़कर
पर सृजन को ध्वंस का साधन न बनने दो।